प्रियदर्शी

सम्पादिका

श्रीमती सावित्री देवी "सविता"

प्रस्तावना लेखक

प्रो० ब्रजराज, एम० ए०, बी० एस-सी, एल-एल० बी०
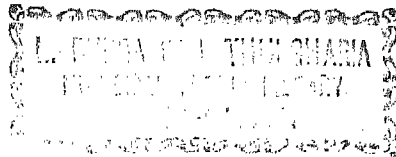
प्रथम संस्करण] १९३४ ई० [मूल्य ।।।)

प्रकाशक—
श्री रमेश चन्द्र सक्सेना
सरस्वती-मन्दिर
प्रयाग

मुद्रक—
श्री बद्री नाथ श्रीवास्तव
कान्ति-प्रेस
१ शिवचरण लाल रोड, प्रयाग

हिन्दी की अनन्य भक्त

स्वर्गीय

श्रीमती सुन्दरवती सक्सेना

धर्मपत्नी

बा. रघुवीर सहाय सिन्हा

की

पुण्य स्मृति में
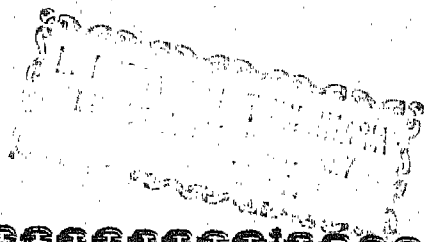
दो शब्द

मुझे हिन्दी का वह काल याद है जब पहले पहल प्रेमचंद जी की कहानियाँ सरस्वती में प्रकाशित होने लगीं। तब अब में आकाश पाताल का अन्तर है। तब मौलिक हिन्दी कहानी लेखक उँगलियों में गिने जा सकते थे और अब गिनती असम्भव है। इनता ही नहीं कला की दृष्टि से बहुत उच्चकोटि का विकाश हो चुका है। कितने ही नये लेखकों की सुन्दर कृतियाँ छोटी-मोटी पत्रिकाओं में छप जाती हैं और हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञों का ध्यान उनकी ओर आकर्षित ही नहीं होता। इस लिये यह परम आवश्यक है कि बहुत से संग्रह छपें जिससे जन-साधारण को और काव्य-मर्मज्ञों को भी इस बात का पता लग सके। कि हमारी भाषा में कैसी आशाजनक उन्नति हो रही है। हिन्दी बोलने वाले लोग अभी इस बात से बिल्कुल अनभिज्ञ हैं—कि वास्तव में हिन्दी ने ऐसी उन्नति कर ली है। कि अब हमको किसी भी भाषा बोलने वाले के सामने शर्माने की जरूरत नहीं।

यह संग्रह ऐतिहासिक कहानियों का संग्रह है। प्रश्न है कि ऐतिहासिक कहानी कहते किसे हैं? जब तक परिभाषा निश्चित

न हो जाय यह कैसे मालूम होगा कि संग्रहकर्त्ता अपने उद्देश्य में सफल हुआ है। एक बात समझ लेनी चाहिये कि ऐतिहासिक कहानी का यह अर्थ नहीं है कि उसमें किसी ऐतिहासिक घटना का ही वर्णन हो या उसमें केवल ऐतिहासिक व्यक्तियों का ही चरित्र चित्रण हो। यदि इस कसौटी से हम परखें तो सम्भवतः इस संग्रह की एक कहानी भी ऐतिहासिक न जान पड़े। परन्तु याद रखना चाहिए कि कहानी का मुख्य अङ्ग कल्पना है। कलाकार को अपनी कल्पना द्वारा ऐतिहासिक सामग्री की सहायता से सौन्दर्य का निर्माण करना पड़ता है। अब वह सौन्दर्य ऐसा हो कि हृदय को आनंद देते हुए मानवी मनोभावों को आध्यात्मिक रंग में रंग दें। अर्थात्, मनोविकारों को आनंद की आँच में तपाकर शुद्ध और पवित्र देवतुल्य भावों में परिणत कर दे। प्रश्न हो सकता है कि सारन्धा क्या अपने सिपाहियों को साथ लिए हुए औरङ्गजेब के सामने बे रोक-टोक पहुँच सकी होगी, यह कलाकार की कल्पना है। औरङ्गजेब और सारन्धा का सामना कराकर उच्च भाव पाठकों के हृदय में भरने का प्रयत्न किया गया है। वह यहीं पर कलाकार का कौशल देखने में आता है।

ऐतिहासिक कहानी में कलाकार को चाहिये कि जिस युग या जिस काल में कथानक की कल्पना की गई हो उसका जीता-जागता चित्र पाठकों के सामने उपस्थित कर दे और पाठकों को स्पष्ट दिखादे कि उस काल का कैसा रहन-सहन था—क्या राज-

नैतिक, धार्मिक या सामाजिक आदर्श थे? जीवन की क्या शैली थी, किन सिद्धान्तों पर व्यक्तियों का पारस्परिक सम्बन्ध था, किन शक्तियों का परस्पर संघर्ष समाज और व्यक्ति के जीवन को आन्दोलित करता था, प्रगति की क्या दिशा थी? यह सब यदि कलाकार चित्रित कर सका तो कह सकते हैं कि वह सफल हुआ। इस कसौटी को सामने रखकर यदि हम इन कहानियों को परखने लगें तो संभव है कि इनमें जहाँ-तहाँ कमी दिखलाई पड़े। कारण वास्तव में यही होगा कि अभी तक भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में पूरी जानकारी नहीं हो सकी है। परन्तु मेरी राय में कलाकारों ने अच्छी सफलता प्राप्त की है। महाराजा रणजीतसिंह पन्थ के सामने कैसे सर झुकाते हैं, इसका जीता जागता चित्र खींचकर कलकार यदि महाराजा रणजीतसिंह के समय का चित्र न भी खींचा हो तो कम से कम इस समय सिक्खों के हृदयों में अपने पन्थ के लिए कितनी श्रद्धा है उसका चित्र तो अवश्य ही खींच दिया है।

यहाँ पर संग्रह की सब कहानियों की समालोचना करना मेरा ध्येय नहीं है। इसलिए पाठकों से यही अनुरोध करूँगा कि इन सब कहानियों को ध्यान धूर्वक पढ़कर कसौटी पर कसें और इसका अन्दाजा लगावे कि कौन सी कहानी ऐतिहासिक कहानी सिद्ध होती है, और कौन सी नहीं। साथ ही यह भी देखें कि सौन्दर्य कहाँ है। सौन्दर्य देख सकने की शक्ति यदि पाठकों में उत्पन्न हुई तो कलाकार अपने काम में सफल हुआ और पाठक

ने यदि आनन्द का अनुभव किया तो उसके समय का सदुपयोग हुआ।

अभी तक हिन्दी में ऐतिहासिक कहानियों का कोई संग्रह नहीं छपा, पहिला ही यह संग्रह है। ऐसे संग्रह की आवश्यकता अवश्य थी। संग्रहकर्त्ता की सूझ और प्रकाशक के उत्साह की सराहना करना चाहिए। इधर कई वर्षों से हिन्दी में कहानियों की बाढ़ सी आगई है। मासिक पत्रिकाओं में ही नहीं साप्ताहिक और दैनिकों तक में कहानी नित्य प्रति छपती हैं। कहानियों की चलन इतनी अधिक हो गयी है कि कितने ही अच्छे संग्रह प्रकाशित हो गये हैं। इसके होते हुये भी ऐतिहासिक कहानियों का यह संग्रह कहानी-साहित्य में विशेष स्थान अवश्य प्राप्त करेगा। कारण कि इसमें हिन्दी के अच्छे-अच्छे लेखकों की कहानियाँ संगृहीत है। ये कहना तो ठीक न होगा कि इससे अच्छा संग्रह सम्भव ही नहीं है, परन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि इस संग्रह की कहानियाँ मनोरंजक और शिक्षा-प्रद हैं।

पाठकों से मेरा यह अनुरोध है कि कल्पना के संसार में विचरण करते हुये अपने हृदय में सौन्दर्य और आनन्द भर लें।

क्रिस्मस
सं० १९९० वि०

ब्रजराज

विषय-सूची

——:o:——

सम्पादकीय वक्तव्य

मैंने इस संग्रह में केवल उन्हीं कहानियों के लाने का प्रयत्न किया है जिनका उद्गम इतिहास के पन्नों से हुआ है। जो केवल इतिहास की सत्यता के साथ लिपटी हुई हैं।

ऐतिहासिक कहानियों तथा इतिहास में बहुत थोड़ा अन्तर रहता है। अन्तर केवल इतना होता है कि इतिहास-लेखक किसी घटना को उसी रूप में ज्यों का त्यों रख देता है। उसमें वह किसी प्रकार की काट-छाँट नहीं करता। वह इस बात की बिल्कुल कोशिश नहीं करता कि घटनाएँ इस प्रकार से लिखी जाँय ताकि उनमें लोच आ जाय। इतिहास-लेखक यदि ऐसा प्रयत्न भी करे तो शायद सफल नहीं हो सकता। वह इसलिए नहीं कि इतिहास लेखक कलाकार होता ही नहीं बल्कि इसलिए कि सत्यता की भित्ति पर अवालम्बित घटनाओं में लोच का मजा आ ही नहीं सकता। यह सब तो कल्पना की गोद में अठ-खेलियाँ करने वाली विभूतियाँ हैं। बिना कल्पना के इनकी सृष्टि हो ही नहीं सकती। इसी लिए एक सच्चा कलाकार कहानी-लेखक किसी एक ऐतिहासिक घटना को इतनी सुन्दरता के साथ कहता है कि बस! कला किलक उठती है, सौन्दर्य निखर उठता है, मधुरता मतवाली बन जाती है। यह इसी लिये होता है कि कलाकार को पूर्ण आजादी रहती है। वह किसी

भी बात को तोड़-मरोड़ सकता है। अपनी कल्पना की तूलिका से उसको सँवार कर, उसमें मन चाही नजाकत ला सकता है, इच्छा-नुसार बल भर सकता है। एक सफल ऐतिहासिक कहानी लेखक जिस समय किसी युद्ध का वर्णन करने लगता है उस समय वह गजब कर देता है; सूखी धमनियों में अनायास ही खून दौड़ जाते हैं, बाहें फड़क उठती हैं; चेहरा तमतमा उठता है; भौहों पर बल आ जाते हैं और सचमुच ही विद्रोही भावनायें एक भीषण तूफ़ान की सृष्टि करने लगती हैं। युद्ध की भयावह तस्वीर आँखों में झूलने लगती है! निस्सन्देह ऐसी ही कहानियां कला-पूर्ण तथा सफल कहानियाँ कही जा सकती हैं जिन कहानियों में उपयुक्त बातें नहीं आतीं उन्हें हम कला की दृष्टि से कहानी नहीं कह सकते। कला-शून्य कहानियाँ तो इतिहास से भी रूखी होती हैं।

संग्रहीत कहानियों में अधिकांश ऐसी ही कहानियाँ हैं जिनका पोर-पोर कला-सौन्दर्य से सँवारा गया है। हाँ सँवारने के ढंग भिन्न-भिन्न हैं। प्रत्येक कहानी अपना एक अलग रूप रखती है। इसमें एक कहानी 'स्नेह की गंगा' बिल्कुल इतिहास के रूप में लिखी गई है किन्तु फिर भी उसकी रोचकता नहीं जाने पाई है। यही इसकी विशेषता है।

पुस्तक के अन्त में 'शान्ति का पुजारी' शीर्षक एक कहानी है। इस के लेखक हैं श्रीयुत "संत" एम० ए०। इस कहानी का उल्लेख मुझे एक विशेष आवश्यकता वश

करना पड़ रहा है। इस कहानी में मुझे एक नवीन शैली का आभास मिलता है। यह कहानी हमें एक ऐसे रास्ते की ओर जाने का संकेत कर रही है जहाँ कहानी का एक अजब रूपही बनाया जा सकता है। वह रूप सचमुच आकर्षक होगा—सुन्दर होगा और साथ ही उपादेय भी होगा। इस समय हमें एक बहुत बड़े अंग्रेज कहानी लेखक के शब्द याद आ रहे हैं, जिनका मैं अपने हृदय की समूची शक्ति के साथ समर्थन करती हूँ। उसका कहना है कि सफल कहानी वही कही जा सकती है जिसमें ततकालीन सभी आचार-विचार, अवस्था-व्यवस्था, रहन-सहन का सच्चा रूप हँसता हुआ मौजूद रहे। जिस काल की कहानी पढ़ें हम अपने चारो ओर उसी कालका वातावरण महसूस करने लगें और उसमें विचरण करते हुए अपने आपको पाएँ। कल्पित मूर्तियाँ जीवित प्रतिमाएँ बनकर हमारे मानसिक मञ्च पर अपना अभिनय दिखादें। हमारे सन्त जी की कहानी में ठीक यही बात मिलती है। कहानी चार भागों में विभक्त की गई है। "कली" में घटना का उद्गम होता है, 'फूल' में उसका विकास काल प्रारम्भ होता है, 'सुगन्धि' से उसका उद्देश्य प्रकट होता है और "पंखुरी" में कहानी का अन्त है।

कहा नहीं जासकता कि इस कहानी के लिखते समय लेखक महोदय का उद्देश्य क्या था। सचमुच ही वह कहानी लिखना "चाहते" थे या नहीं। यह सन्देह मुझे इसलिये हुआ है कि कहानी के तीन भाग तो कहानी के रूप में उतरे हैं किन्तु अन्त में उसका

रूप जीवनी का रूप बन जाता है। इस तरह से कहानी का रूप उलझ सा गया है। यदि इसका अंतिम भाग निकाल दें तो शेष भागों से निस्सन्देह एक ऐसी नवीन शैली की सृष्टि होती है जो अपनाने योग्य हो सकती है।

संग्रह की कहानियाँ कैसी हैं, यह तो मैं नहीं कह सकती, किन्तु इतना निस्संकोच भाव से कहूँगी कि हिन्दी में एक ऐसे संग्रह की आवश्यकता थी, जिनमें केवल ऐतिहासिक कहानियाँ संग्रह की जावें। यदि इस गंभीर आवश्यकता की पूर्ति मेरे इस संग्रह से थोड़ी बहुत भी हुइ तो मैं अपने परिश्रम के सफल समझूँगी।

"सविता"

रानी सारन्धा

(लेखक—प्रेमचन्द)

[बाबू प्रेमचन्द जी हिन्दी संसार के सर्व-श्रेष्ठ कहानी लेखक हैं। आपकी कहानियों में सजीवता की अक्षय धाराएँ जहाँ-तहाँ बहती रहती हैं—आप चरित्र-चित्रण में बड़े ही पटु हैं। यह ऐतिहासिक कहानी आपकी विशेष प्रसिद्ध है।]

(१)

अँधेरी रात के सन्नाटे में धसान नदी चट्टानों से टकराती हुई ऐसी सुहावनी मालूम होती थी जैसे घुमुर-घुमुर करती हुई चक्कियाँ। नदी के दाहिने तट पर एक टीला है। उस पर एक पुराना दुर्ग बना हुआ है, जिसको जङ्गली वृक्षों ने घेर

रक्खा है। टीले के पूर्व की ओर एक छोटा-सा गाँव है। यह गढ़ी और गाँव, दोनों एक बुन्देला सरदार के कीर्ति-चिन्ह हैं। शताब्दियाँ व्यतीत हो गईं, बुन्देलखण्ड में कितने ही राज्यों का उदय और अस्त हुआ, मुसलमान आये और गये, बुन्देला राजा उठे और गिरे, कोई गाँव, कोई इलाक़ा, ऐसा न था जो इन दुर्व्यवस्थाओं से पीड़ित न हो; मगर इस दुर्ग पर किसी शत्रु की विजय-पताका न फहराई।और इस गाँव में किसी विद्रोह का कभी पदार्पण न हुआ। यह उसका सौभाग्य था।

अनिरुद्धसिंह वीर राजपूत था। वह ज़माना ही ऐसा था, जब मनुष्य-मात्र को अपने बाहु-बल और पराक्रम ही का भरोसा था। एक ओर मुसलमान सेनाएं पैर जमाये खड़ी रहती थीं, दूसरी ओर बलवान् राजा अपने निर्बल भाइयों का गला घोटने पर तत्पर रहते थे, अनिरुद्धसिंह के पास सवारों और पियादों का एक छोटा-सा, मगर सजीव, दल था। इससे वह अपने कुल और मर्यादा की रक्षा किया करता था। उसे कभी चैन से बैठना नसीब न होता था। तीन वर्ष पहले उसका विवाह शीतला देवी से हुआ, मगर।अनिरुद्ध विहार के दिन और विलास की रातें पहाड़ों में काटता था और शीतला उसकी जान की ख़ैर मनाने में। वह कितनी ही बार पति से अनुरोध कर चुकी थी, कितनी ही बार उसके पैरों पर गिर कर रोई थी, कि तुम मेरी आँखों से दूर न हो, मुझे हरिद्वार ले

चलो, मुझे तुम्हारे साथ बन-वास अच्छा है, यह वियोग अब नहीं सहा जाता। उसने प्यार से कहा, जिद से कहा, विनय की; मगर अनिरुद्ध बुन्देला था। शीतला अपने किसी हथियार से उसे परास्त न कर सकी।

(२)

अंधेरी रात थी। सारी दुनिया सोती थी, मगर तारे आकाश में जागते थे। शीतला देवी पलङ्ग पर पड़ी करवटें बदल रही थी और उसकी ननद सारन्धा फ़र्श पर बैठी हुई मधुर स्वर से गाती थी—

'बिन रघुवीर कटत नहिं रैन।'

शीतला ने कहा—जी न जलाओ, क्या तुम्हें भी नींद नहीं आती?

सारन्धा—तुम्हें लोरी सुना रही हूँ।

शीतला—मेरी आँखों से तो नींद लोप हो गई।

सारन्धा—किसी को ढूँढ़ने गई होगी।

इतने में द्वार खुला और एक गठे हुए बदन के रूपवान् पुरुष ने भीतर प्रवेश किया। यह अनिरुद्ध था। उसके कपड़े भीगे हुए थे, और बदन पर कोई हथियार न था। शीतला चारपाई से उतर कर जमीन पर बैठ गई।

सारन्धा ने पूछा—भैया, यह कपड़े भीगे क्यों हैं?

अनिरुद्ध—नदी पैर कर आया हूँ।

सारन्धा—हथियार क्या हुए?

अनिरुद्ध—छिन गये।

सारन्धा—और साथ के आदमी?

अनिरुद्ध—सब ने वीर गति पाई।

शीतला ने दबी जबान से कहा—ईश्वर ने ही कुशल किया...; मगर सारन्धा के तीवरों पर बल पड़ गये और मुख-मण्डल गर्व से सतेज हो गया। बोली—भैया, तुमने कुल की मर्य्यादा खो दी। ऐसा कभी न हुआ था।

सारन्धा भाई पर जान देती थी। उसके मुँह से यह धिक्कार सुन कर अनिरुद्ध लज्जा और खेद से विकल हो गया। वह वीराग्नि, जिसको क्षण-भर के लिए अनुराग ने दबा दिया था, फिर ज्वलन्त हो गई। वह उलटे पाँव लौटा और यह कह कर बाहर चला गया कि सारन्धा, तुमने मुझे सदैव के लिए सचेत कर दिया। यह बात मुझे कभी न भूलेगी।

अँधेरी रात थी। आकाश-मण्डल में तारों का प्रकाश बहुत धुँधला था। अनिरुद्ध क़िले से बाहर निकला। पल-भर में नदी के उस पार जा पहुंचा, और फिर अन्धकार में लुप्त हो गया। शीतला उसके पीछे-पीछे क़िले की दीवारों तक आई; मगर जब अनिरुद्ध छलाँग मार कर बाहर कूद पड़ा, तो वह विरहिणी एक चट्टान पर बैठ कर रोने लगी।

इतने में सारन्धा भी वहीं आ पहुँची। शीतला ने नागिन की तरह बल खाकर कहा—मर्य्यादा इतनी प्यारी है?

सारन्धा—हाँ।

शीतला—अपना पति होता, तो हृदय में छिपा लेतीं।

सारन्धा—न, छाती में छुरी चुभा देती।

शीतला ने ऐंठ कर कहा—डोली में छिपाती फिरोगी, मेरी बात गिरह में बाँध लो।

सारन्धा—जिस दिन ऐसा होगा, मैं भी अपना वचन पूरा कर दिखाऊँगी।

इस घटना के तीन महीने पीछे अनिरुद्ध मदरौना को जीत कर लौटा और साल-भर पीछे सारन्धा का विवाह ओरछा के राजा चम्पतराय से हो गया। मगर उस दिन की बातें दोनों महिलाओं के हृदय-स्थल में काँटे की तरह खटकती रहीं।

(२)

राजा चम्पतराय बड़े प्रतिभाशाली पुरुष थे। सारी बुन्देला जाति उनके नाम पर जान देती थी और उनके प्रभुत्व को मानती थी। गद्दी पर बैठते ही उसने मुग़ल बादशाहों को कर देना बन्द कर दिया और अपने बाहु-बल से राज्य-विस्तार करने लगा। मुसलमानों की सेनाएँ बार-बार उस पर हमले करती थीं; पर हार कर लौट जाती थीं।

यही समय था, जब अनिरुद्ध ने सारन्धा का चम्पतराय से विवाह कर दिया। सारन्धा ने मुँह-माँगी मुराद पाई। उसकी यह अभिलाषा कि मेरा पति बुन्देला जाति का कुल-तिलक हो, पूरी हुई। यद्यपि राजा के रनिवास में पाँच रानियाँ थीं; मगर उन्हें शीघ्र ही मालूम हो गया कि वह देवी जो हृदय में मेरी पूजा करती है, सारन्धा है।

परन्तु कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं कि चम्पतराय को मुगल-बादशाह का आश्रित होना पड़ा। वह अपना राज्य अपने भाई पहाड़सिंह को सौंप कर आप देहली को चला गया, यह शाहजहाँ के शासनकाल का अन्तिम भाग था। शाहजादा दाराशिकोह राजकीय कार्य्यों को सँभालते थे; युवराज की आँखों में शील था और चित्त में उदारता। उन्होंने चम्पतराय की वीरता की कथाएँ सुनी थीं, इसलिए उसका बहुत आदर-सम्मान किया और कालपी की बहुमूल्य जागीर उसके भेंट की, जिसकी आमदनी नौ लाख थी। यह पहला अवसर था कि चम्पतराय को आए-दिन के लड़ाई-झगड़ों से निवृत्ति मिली और उसके साथ ही भोग-विलास का प्राबल्य हुआ। रात-दिन आमोद-प्रमोद की चर्चा रहने लगी। राजा विलास में डूबे, रानियाँ जड़ाऊ गहनों पर रीझीं। मगर सारन्धा इन दिनों बहुत उदास और संकुचित रहती थी। वह इन रहस्यों से दूर-दूर रहती, ये नृत्य और गान की सभाएँ उसे सूनी प्रतीत होतीं थीं!

एक दिन चम्पतराय ने सारन्धा से कहा—सारन, तुम

उदास क्यों रहती हो? मैं तुम्हें कभी हँसते नहीं देखता क्या मुझसे नाराज़ हो?

सारन्धा की आँखों में जल भर आया। बोली—स्वामी जी! आप क्यों ऐसा विचार करते हैं? जिसमें आप प्रसन्न हैं, उसमें मैं भी खुश हूँ।

चम्पतराय—मैं जब से आया हूँ, मैंने तुम्हारे मुख-कमल पर कभी मनोहारिणी मुसकराहट नहीं देखी। तुमने कभी अपने हाथों से मुझे बीड़ा नहीं खिलाया। कभी मेरी पाग नहीं सँवारी। कभी मेरे शरीर पर शस्त्र नहीं सजाये। कहीं प्रेम-लता मुरझाने तो नहीं लगी?

सारन्धा—प्राणनाथ! आप मुझसे ऐसी बात पूछते हैं, जिसका उत्तर मेरे पास नहीं है! यथार्थ में इन दिनों मेरा चित्त कुछ उदास रहता है। मैं बहुत चाहती हूँ कि .खुश रहूँ, मगर एक बोझा-सा हृदय पर धरा रहता है।

चम्पतराय स्वयं आनन्द में मग्न थे। इसलिए उनके विचार में सारन्धा को असन्तुष्ट रहने का कोई उचित कारण नहीं हो सकता था। वे भौंहें सिकोड़ कर बोले—मुझे तुम्हारे उदास रहने का कोई विशेष कारण नहीं मालूम होता। ओरछे में कौन-सा सुख था, जो यहाँ नहीं है? सारन्धा का चेहरा लाल हो गया। बोली—मैं कुछ कहूँ, आप नाराज़ तो न होंगे?

चम्पतराय—नहीं, शौक़ से कहो।

सारन्धा—ओरछा में मैं एक राजा की रानी थी, यहाँ मैं एक जागीरदार की चेरी हूँ। ओरछा में मैं वह थी जो अवध में कौशल्या थीं, परन्तु यहाँ मैं बादशाह के एक सेवक की स्त्री हूँ। जिस बादशाह के सामने आज आप आदर से सिर झुकाते हैं, वह कल आपके नाम से काँपता था। रानी से चेरी होकर भी प्रसन्न-चित्त होना मेरे वश में नहीं है। आपने यह पद और ये विलास की सामग्रियाँ बड़े महँगे दामों में मोल ली हैं।

चम्पतराय के नेत्रों से एक पर्दा-सा हट गया। वे अब तक सारन्धा की आत्मिक उच्चता को न जानते थे। जैसे बे-माँ-बाप का बालक माँ की चर्चा सुन कर रोने लगता है, उसी तरह ओरछा की याद से चम्पतराय की आँखें सजल हो गईं। उन्होंने आदर-युक्त अनुराग के साथ सारन्धा को हृदय से लगा लिया।

आज से उन्हें फिर उसी उजड़ी बस्ती की फ़िक्र हुई, जहाँ से धन और कीर्ति की अभिलाषाएँ खींच लाई थीं।

(४)

माँ अपने खोये हुए बालक को पाकर निहाल हो जाती है। चम्पतराय के आने से बुन्देलखण्ड निहाल हो गया।

ओरछा के भाग जागे। नौबतें झड़ने लगीं, और फिर सारन्धा के कमल-नेत्रों में जातीय अभिमान का आभास दिखलाई देने लगा।

यहाँ रहते कई महीने बीत गये। इसी बीच में शाहजहाँ बीमार पड़ा। शाहज़ादाओं में पहले से ईर्षा की अग्नि दहक रही थी, यह ख़बर सुनते ही ज्वाला प्रचण्ड हुई। संग्राम की की तैयारियाँ होने लगीं। शाहज़ादा मुराद और मुहीउद्दीन अपने-अपने दल सजा कर दक्खिन से चले। वर्षा के दिन थे। उर्वरा भूमि रंग-बिरंगे रूप भर कर अपने सौन्दर्य को दिखाती थी।

मुराद और मुहीउद्दीन उमंगों से भरे हुए क़दम बढ़ाते चले आते थे। यहाँ तक कि वे धौलपुर के निकट चम्बल के तट पर आ पहुँचे परन्तु यहाँ उन्होंने बादशाही सेना को अपने शुभागमन के निमित्त तैयार पाया।

शाहज़ादे अब बड़ी चिन्ता में पड़े। सामने अगम्य नदी लहरें मार रही थी, लोभ से भी अधिक विस्तार वाली। घाट पर लोहे की दीवार खड़ी थी, किसी योगी के त्याग के सदृश सुदृढ़। विवश होकर चम्पतराय के पास सँदेशा भेजा कि खुदा के लिए आकर हमारी डूबती हुई नाव को पार लगाइये।

राजा ने भवन में जाकर सारन्धा से पूछा—इसका क्या उत्तर दूँ?

सारन्धा—आपको मदद करनी होगी।

चम्पतराय—उनकी मदद करना दाराशिकोह से वैर लेना है।

सारन्धा—यह सत्य है; परन्तु हाथ फैलाने की मर्य्यादा भी तो निभानी चाहिए।

चम्पतराय—प्रिये! तुमने सोचकर जवाब नहीं दिया।

सारन्धा—प्राणनाथ! मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि यह मार्ग कठिन है और हमें अपने योद्धाओं का रक्त पानी के समान बहाना पड़ेगा; परन्तु हम अपना रक्त बहायँगे, और चम्बल की लहरों को लाल कर देंगे। विश्वास रखिये कि जब तक नदी की धारा बहती रहेगी, वह हमारे वीरों की कीर्ति-गान करती रहेगी। जब तक बुन्देलों का एक भी नाम-लेवा रहेगा, यह रक्त-बिन्दु उसके माथे पर केशर का तिलक बनकर चमकेगा।

वायु-मण्डल में मेघराज की सेनाएँ उमड़ रही थीं। ओरछे के किले से बुन्देलों की एक काली घटा उठी और वेग के साथ चम्बल की तरफ चली। प्रत्येक सिपाही वीर-रस से झूम रहा था। सारन्धा ने दोनों राजकुमारों को गले से लगा लिया और राजा को पान का बीड़ा देकर कहा—बुन्देलों की लाज अब तुम्हारे हाथ है।

आज उसका एक-एक अंग मुसकिरा रहा है और हृदय हुलसित है। बुन्देलों की यह सेना देखकर शाहजादे फूले न समाये।

राजा वहाँ की अंगुल-अंगुल भूमि से अपरिचित थे। उन्होंने बुन्देलों को तो एक आड़ में छिपा दिया और वे शाहज़ादे की फौजों को सजाकर नदी के किनारे-किनारे पश्चिम को ओर चले। दाराशिकोह को भ्रम हुआ कि शत्रु किसी अन्य घाट से नदी उतरना चाहता है। उन्होंने घाट पर से मोर्चे हटा लिये। घाट में बैठे हुए बुन्देले इसी ताक में थे। बाहर निकल पड़े और उन्होंने तुरन्त ही नदी में घोड़े डाल दिए। चम्पतराय ने शाहज़ादा दाराशिकोह को भुलावा देकर अपनी फौज घुमा दी और वह बुन्देलों के पीछे चलता हुआ उसे पार उतार लाया। इस कठिन चाल में सात घण्टे का विलम्ब हुआ; परन्तु जाकर देखा, तो सात सौ बुन्देला योद्धाओं की लाशें फड़क रही थीं।

राजा को देखते ही बुन्देलों की हिम्मत बँध गई। शाहज़ादा की सेना ने भी 'अल्लाहो-अकबर' की ध्वनि के साथ धावा किया। बादशाही सेना में हलचल पड़ गई। उनकी पंक्तियाँ छिन्न-भिन्न हो गईं, हाथोहाथ लड़ाई होने लगी, यहाँ तक कि शाम हो गई। रण-भूमि रुधिर से लाल हो गई और आकाश में अंधेरा हो गया। घमासान की मार हो रही थी। बादशाही सेना शाहज़ादों को दबाये आती थी, अकस्मात् पश्चिम से फिर बुन्देलों की एक लहर उठी और इस वेग से बादशाही सेना की पुश्त पर टकराई कि उसके क़दम उखड़ गए। जीता हुआ मैदान हाथ से निकल गया। लोगों को कौतूहल था कि यह दैवी सहायता कहाँ से आई। सरल स्वभाव के लोगों ने धारणा की कि यह फ़तह

के फ़रिश्ते हैं, शाहज़ादों की मदद के लिए आए हैं। परन्तु जब राजा चम्पतराय निकट गए, तो सारन्धा ने घोड़े से उतरकर उनके पद पर सिर झुका दिया। राजा को असीम आनन्द हुआ।

समर-भूमि का दृश्य इस समय अत्यन्त दुःखमय था। थोड़ी देर पहले जहाँ सजे हुये वीरों के दल थे, वहाँ अब बे-जान लाशें फड़क रहीं थीं। मनुष्य ने अपने स्वार्थ के लिए आदि से ही भाइयों की हत्या की है।

अब विजयी सेना लूट पर टूट पड़ी। पहले मर्द मर्दों से लड़ते थे, अब वे मुर्दों से लड़ रहे थे। वह वीरता और पराक्रम का चित्र था, वह नीचता और दुर्बलता की ग्लानि-प्रद तसवीर थी। उस समय मनुष्य पशु बना हुआ था, अब वह पशु से भी बढ़ गया था।

इस नोच खसोट में लोगों को बादशाही सेना के सेनापति घायल वली-बहादुरखाँ दिखाई दिए। उसके निकट उसका घोड़ा खड़ा हुआ अपनी दुम से मक्खियाँ उड़ा रहा था। राजा को घोड़ों का शौक था। देखते ही उस पर मोहित हो गया। यह एराकी जाति का अति सुन्दर घोड़ा था। एक-एक अंग साँचे में ढला हुआ, सिंह की-सी छाती, चेतकी-सी कमर, उसका यह प्रेम और स्वामि-भक्ति देखकर लोगों को बड़ा कौतूहल हुआ। राजा ने हुक्म दिया—"खबरदार! इस प्रेमी पर कोई हथियार

न चलाए, इसे जीता पकड़ लो, यह मेरे अस्तबल की शोभा बढ़ाएगा। जो इसे मेरे पास लायगा, उसे धन से निहाल कर दूंगा।

योद्धागण चारों ओर से लपके; परन्तु किसी को साहस न होता था कि उसके निकट जा सके। कोई चुमकारता था, कोई फन्दे से फँसाने की फ़िक्र में था; पर कोई उपाय सफल न होता था। वहाँ सिपाहियों का एक मेला-सा लगा हुआ था।

तब सारन्धा अपने खेमे से निकली और निर्भय होकर घोड़े के पास चली गई। उसकी आँखों में प्रेम का प्रकाश था, छल का नहीं। घोड़े ने सिर झुका दिया। रानी ने उसकी गर्दन पर हाथ रक्खा, और वह उसकी पीठ सुहलाने लगी। घोड़े ने उसके अञ्चल में मुँह छिपा लिया। रानी उसकी रास पकड़कर खेमे की ओर चली। घोड़ा इस तरह चुपचाप उसके पीछे चला, मानो सदैव से उसका सेवक है।

पर बहुत अच्छा होता कि घोड़े ने सारन्धा से भी निष्ठुरता की होती। यह सुन्दर घोड़ा आगे चलकर इस राज-परिवार के निमित्त रत्न-जटित मृग प्रतीत हुआ।

(५)

संसार एक रण-क्षेत्र है। इस मैदान में उसी सेनापति को विजय-लाभ होता है, जो अवसर को पहचानता है। वह अवसर देखकर जितने उत्साह से आगे बढ़ता है, उतने ही उत्साह से

आपत्ति के समय पर पीछे हट जाता है। वह वीर पुरुष राष्ट्र का निर्माता होता है, और इतिहास उसके नाम पर यश के फूलों की वर्षा करता है।

पर इस मैदान में कभी-कभी ऐसे सिपाही भी आ जाते हैं, जो अवसर पर क़दम बढ़ाना जानते हैं; लेकिन संकट में पीछे हटना नहीं जानते। यह रणधीर पुरुष विजय को नीति से भेंट कर देता है। वह अपनी सेना का नाम मिटा देगा; किन्तु जहाँ एक बार पहुँच गया है, वहाँ से क़दम पीछे न हटायगा। उनमें कोई बिरला ही संसार-क्षेत्र में विजय प्राप्त करता है, किन्तु प्रायः उसकी हार विजय से भी गौरवात्मक होती है, अगर वह अनुभवशील सेनापति राष्ट्रों की नींव डालता है, तो यह आनपर जान देनेवाला, यह मुँह न मोड़नेवाला सिपाही राष्ट्र के भावों को उच्च करता है, इस कार्य-क्षेत्र में चाहे सफलता न हो; किन्तु जब किसी वाक्य या सभा में उसका नाम ज़बान पर आ जाता है, तो श्रोतागण एक स्वर से उसके कीर्ति-गौरव को प्रतिध्वनित कर देते हैं। सारन्धा इन्हीं 'आन पर जान देनेवालों' में थी।

शाहज़ादा मुहीउद्दीन चम्बल के किनारे से आगरे की ओर चला, तो सौभाग्य उसके सिर पर मोरछल हिलाता था। जब वह आगरे पहुँचा, तो विजयदेवी ने उसके लिए सिंहासन सजा दिया।

औरंगजेब गुणज्ञ था। उसने बादशाही सरदारों के अपराध क्षमा कर दिये, उनके राज्य-पद लौटा दिये और राजा चम्पतराय

को उसके बहुमूल्य कृत्यों के उपलक्ष में 'बारह हज़ारी मनसब' प्रदान किया। ओरछा से बनारस और बनारस से यमुना तक उसकी जागीर नियत की गई। बुन्देला राजा फिर राज्यसेवक बना, वह फिर सुख-विलास में डूबा, और रानी सारन्धा फिर पराधीनता के शोक से घुलने लगी।

वली-बहादुर खाँ बड़ा वाक्यचतुर मनुष्य था। उसकी मृदुलता ने शीघ्र ही उसे बादशाह आलमगीर का विश्वासपात्र बना दिया। उसपर राज-सभा में सम्मान की दृष्टि पड़ने लगी।

ख़ाँसाहब के मन में अपने घोड़े के हाथ से निकल जाने का बड़ा शोक था। एक दिन कुँअर छत्रसाल उसी घोड़े पर सवार होकर सैर को गया था। वह ख़ाँसाहब के महल के तरफ़ जा निकला। वली बहादुर ऐसे ही अवसर की ताक में था। उसने तुरंत अपने सेवकों को इशारा किया, राजकुमार अकेला क्या करता। पाँव-पाँव घर आया, और उसने सारन्धा से सब समाचार बयान किया। रानी का चेहरा तमतमा गया, बोली—मुझे इसका शोक नहीं कि घोड़ा हाथ से गया; शोक इसका है कि तू उसे खोकर जीता क्यों लौटा? क्या तेरे शरीर में बुन्देलों का रक्त नहीं है? घोड़ा न मिलता न सही; किन्तु तुझे दिखा देना चाहिये था कि एक बुन्देला बालक से उसका घोड़ा छीन लेना हँसी नहीं है।

यह कहकर उसने अपने पच्चीस योद्धाओं को तैयार होने की

आज्ञा दी, स्वयं अस्त्र धारण किए और योद्धाओं के साथ वली-बहादुरखाँ के निवास-स्थान पर जा पहुँची। खाँसाहब उसी घोड़े पर सवार होकर दरबार चले गए थे। सारन्धा दरबार की तरफ़ चली, और एक क्षण में किसी वेगवती नदी के सदृश बादशाही दरबार के सामने जा पहुँची। वह कैफ़ियत देखते ही दरबार में हलचल मच गई। अधिकारी-वर्ग इधर-उधर से आकर जमा हो गए। आलमगीर भी सहन में निकल आये। लोग अपनी-अपनी तलवारें सँभालने लगे और चारों तरफ शोर मच गया। कितने ही नेत्रों ने इसी दरबार में अमरसिंह की तलवार की चमक देखी थी। उन्हें वही घटना फिर याद आ गई।

सारन्धा ने उच्च स्वर से कहा—खाँसाहब! बड़ी लज्जा की बात है कि आपने वह वीरता, जो चम्बल के तट पर दिखानी चाहिए थी, आज एक अबोध बालक के सम्मुख दिखाई है। क्या यह उचित था कि आप उससे घोड़ा छीन लेते?

वली-बहादुरखाँ की आँखों से अग्नि-ज्वाला निकल रही थी। वे कड़ी आवाज़ से बोले—किसी ग़ैर को क्या मजाज़ है कि मेरी चीज़ अपने काम में लाए?

रानी—वह आपकी चीज़ नहीं, मेरी है। मैंने उसे रणभूमि में पाया है और उसपर मेरा अधिकार है। क्या रणनीति की इतनी मोटी बात भी आप नहीं जानते?

खाँसाहब—वह घोड़ा मैं नहीं दे सकता, उसके बदले में सारा अस्तबल आपको नज़र है।

रानी—मैं अपना घोड़ा लूँगी।

खाँसाहब—मैं उसके बराबर जवाहरात दे सकता हूँ; परन्तु घोड़ा नहीं दे सकता हूँ।

रानी—तो फिर इसका निश्चय तलवारों से होगा।

बुन्देला योद्धाओं ने तलवारें निकाल लीं और निकट था कि दरबार की भूमि रक्त से प्लावित हो जाय कि बादशाह आलमगीर ने बीच में आकर कहा—रानी साहबा! आप सिपाहियों को रोकें। घोड़ा आपको मिल जायगा; परन्तु उसका मूल्य बहुत देना पड़ेगा।

रानी—मैं उसके लिए अपना सर्वस्व त्यागने पर तैयार हूं।

बादशाह—जागीर और मनसब भी?

रानी—जागीर और मनसब कोई चीज नहीं।

बादशाह—अपना राज्य भी?

रानी—हाँ राज्य भी।

बादशाह—एक घोड़े के लिए?

रानी—नहीं, उस पदार्थ के लिए जो संसार में सब से अधिक मूल्यवान् है।

बादशाह—वह क्या है?

रानी—अपनी आन।

इस भाँति रानी ने एक घोड़े के लिए अपनी विस्तृत जागीर, उच्च राज्यपद और राज-सम्मान सब हाथ से खोया और केवल इतना ही नहीं, भविष्य के लिए काँटे बोए। इस घड़ी से अन्त दशा तक चम्पतराय को चैन न मिली।

(६)

राजा चम्पतराय ने फिर ओरछे के किले में पदार्पण किया। उन्हें मनसब और जागीर के हाथ से निकल जाने का अत्यन्त शोक हुआ; किन्तु उन्होंने अपने मुँह से शिकायत का एक शब्द भी नहीं निकाला। वे सारन्धा के स्वभाव को भली-भाँति जानते थे। शिकायत इस समय उसके आत्म-गौरव पर कुठार का काम करती। कुछ दिन यहाँ शांति पूर्वक व्यतीत हुए। लेकिन बादशाह सारन्धा की कठोर बातें भूला न था। वह क्षमा करना जानता ही न था। ज्योंही भाइयों की ओर से निश्चिन्त हुआ, उसने एक बड़ी सेना चम्पतराय का गर्व चूर्ण करने के निमित्त भेजी और बाईस अनुभवशील सरदार इस मुहीम पर नियुक्त किए। शुभकरण बुन्देला बादशाह का सूबेदार था। वह चम्पतराय का बचपन का मित्र और सहपाठी था। उसने चम्पतराय को परास्त करने का बीड़ा उठाया। और भी कितने ही बुन्देला सरदार राजा से विमुख होकर बादशाही सूबेदार से आ मिले। एक घोर संग्राम हुआ। भाइयों की तलवारें रक्त से लाल हुईं। यद्यपि इस समर में राजा

को विजय प्राप्त हुई; लेकिन उनकी शक्ति सदा के लिए क्षीण हो गई। निकटवर्ती बुन्देला राजा जो चम्पतराय के बाहु-बल थे, बादशाह के कृपाकांक्षी बन बैठे। साथियों में कुछ तो काम आये, कुछ दग़ा कर गए। यहाँ तक कि निज सम्बन्धियों ने भी आँखें चुरा लीं; परन्तु इन कठिनाइयों में भी चम्पतराय ने हिम्मत नहीं हारी। धीरज को न छोड़ा। उन्होंने ओरछा छोड़ दिया, और तीन वर्ष तक बुन्देलखण्ड के सघन पर्वतों पर छिपे फिरते रहे। बादशाही सेनाएँ शिकारी जानवरों की भाँति सारे देश में मँडरा रही थीं। आये-दिन राजा का किसी-न-किसी से सामना हो जाता था। सारन्धा सदैव उनके साथ रहती, और उनका साहस बढ़ाया करती। बड़ी-बड़ी आपत्तियों में भी जब कि धैर्य लुप्त हो जाता—और आशा साथ छोड़ देती—आत्मरक्षा का धर्म्म उसे सँभाले रहता था। तीन साल के बाद अन्त में बादशाह के सूबेदारों ने आलमगीर को सूचना दी कि इस शेर का शिकार आपके सिवाय और किसी से न होगा। उत्तर आया कि सेना को हटा लो, और घेरा उठा लो। राजा ने समझा, संकट से निवृत्ति हुई, पर यह बात शीघ्र ही भ्रमात्मक सिद्ध हो गई।

(७)

तीन सप्ताह से बादशाही सेना ने ओरछा घेर रक्खा है। जिस तरह कठोर वचन हृदय को छेद डालते हैं, उसी तरह

तोपों के गोलों ने दीवारों को छेद डाला है। किले में २० हजार आदमी घिरे हुए हैं, लेकिन उनमें आधे से अधिक स्त्रियाँ और उनसे कुछ ही कम बालक हैं। मर्दों की संख्या दिनोदिन न्यून होती जाती है। आने-जाने के मार्ग चारों तरफ़ से बन्द हैं। हवा का भी गुज़र नहीं। रसद का सामान बहुत कम रह गया है। स्त्रियाँ पुरुषों और बालकों को जीवित रखने के लिए आप उपवास करती हैं। लोग बहुत हताश हो रहे हैं। औरतें सूर्य-नारायण की ओर हाथ उठा-उठा कर शत्रु को कोसती हैं। बालकवृन्द मारे क्रोध के दीवारों की आड़ से उन पर पत्थर फेंकते हैं, जो मुश्किल से दीवार के उस पार जाते हैं। राजा चम्पतराय स्वयम् ज्वर से पीड़ित हैं, उन्होंने कई दिन से चारपाई नहीं छोड़ी। उन्हें देख कर लोगों को कुछ ढाढस होता था; लेकिन उनकी बीमारी से सारे किले में नैराश्य छाया हुआ है।

राजा ने सारन्धा से कहा—आज शत्रु ज़रूर किले में घुस आयँगे।

सारन्धा—ईश्वर न करे कि इन आँखों से वह दिन देखना पड़े।

राजा—मुझे बड़ी चिन्ता इन अनाथ स्त्रियों और बालकों की है। गहूँ के साथ यह घुन भी पिस जायँगे।

सारन्धा—हम लोग यहाँ से निकल जायें तो कैसा?

राजा—इन अनाथों को छोड़ कर ?

सारन्धा—इस समय इन्हें छोड़ देने ही में कुशल है। हम न होंगे, तो शत्रु इन पर कुछ दया अवश्य ही करेंगे।

राजा—नहीं, यह लोग मुझसे न छोड़े जायँगे। जिन मर्दों ने अपनी जान हमारी सेवा में अर्पण कर दी है, उनकी स्त्रियों और बच्चों को मैं यों कदापि नहीं छोड़ सकता।

सारन्धा—लेकिन यहाँ रह कर हम उनकी कुछ मदद भी तो नहीं कर सकते।

राजा उनके साथ प्राण तो दे सकते हैं ? मैं उनकी रक्षा में अपनी जान लड़ा दूँगा। उनके लिए बादशाही सेना की खुशामद करूँगा। कारावास को कठिनाइयाँ सहूँगा; किन्तु इस संकट में उन्हें छोड़ नहीं सकता।

सारन्धा ने लज्जित होकर सिर झुका लिया और सोचने लगी, निस्सन्देह अपने प्रिय साथियों को आग की आँच में छोड़ कर अपनी जान बचाना घोर नीचता है। मैं ऐसी स्वार्थांध क्यों हो गई हूँ ? लेकिन फिर एकाएक विचार उत्पन्न हुआ। बोली—यदि आपको विश्वास हो जाय कि इन आदमियों के साथ कोई अन्याय न किया जायगा, तब तो आपको चलने में कोई बाधा न होगी ?

राजा—(सोच कर) कौन विश्वास दिलायगा ?

सारन्धा—बादशाह के सेनापति का प्रतिज्ञापत्र।

राजा--हाँ, तब मैं सानन्द चलूँगा।

सारन्धा विचार-सागर में डूबी। बादशाह के सेनापति से क्योंकर यह प्रतिज्ञा कराऊँ? कौन यह प्रस्ताव लेकर वहाँ जायगा और वे निर्दयी ऐसी प्रतिज्ञा करने ही क्यों लगे। उन्हें तो अपनी विजय की पूरी आशा है। मेरे यहाँ ऐसा नीति-कुशल, वाक्पटु चतुर कौन है, जो इस दुस्तर कार्य को सिद्ध करे। छत्रसाल चाहे तो कर सकता है। उसमें ये सब गुण मौजूद हैं।

इस तरह मन में निश्चय करके रानी ने छत्रसाल को बुलाया। यह उसके चारों पुत्रों में सब से बुद्धिमान् और साहसी था। रानी उसे सब से अधिक प्यार करती थी। जब छत्रसाल ने आकर रानी को प्रणाम किया तो उसके कमल-नेत्र सजल हो गए और हृदय से दीर्घ निश्वास निकल आया।

छत्रसाल—माता, मेरे लिए क्या आज्ञा है।

रानी--आज लड़ाई का क्या ढंग है?

छत्रसाल--हमारे पचास योद्धा अब तक काम आ चुके हैं।

रानी--बुन्देलों की लाज अब ईश्वर के हाथ है।

छत्रसाल--हम आज रात को छापा मारेंगे।

रानी ने संक्षेप से अपना प्रस्ताव छत्रसाल के सामने उपस्थित किया और कहा—यह काम किसको सौंपा जाय !

छत्रसाल—मुझको ।

"तुम इसे पूरा कर दिखाओगे ?"

"हाँ, मुझे पूर्ण विश्वास है ।"

"अच्छा जाओ, परमात्मा तुम्हारा मनोरथ पूरा करे ।"

छत्रसाल जब चला तो रानी ने उसे हृदय से लगा लिया और तब आकाश की ओर दोनों हाथ उठाकर कहा—दयानिधि मैंने अपना तरुण और होनहार पुत्र बुन्देलों की आन के आगे भेंट कर दिया । अब इस आन को निभाना तुम्हारा काम है । मैंने बड़ीमूल्यवान वस्तु अर्पित की है । इसे स्वीकार करो ।

(८)

दूसरे दिन प्रातःकाल सारन्धा स्नान करके थाल में पूजा की सामग्री लिए मन्दिर को चली । उसका चेहरा पीला पड़ गया था, और आँखों-तले अँधेरा छाया जाता था । वह मन्दिर के द्वार पर पहुँची थी, कि उसके थाल में बाहर से आकर एक तीर गिरा । तीर की नोक पर एक कागज़ का पुर्ज़ा लिपटा हुआ था । सारन्धा ने थाल मन्दिर के चबूतरे पर रख दिया और पुर्ज़े को खोल कर देखा, तो आनन्द से चेहरा खिल गया :

लेकिन यह आनन्द क्षणभर का मेहमान था। हाय! इस पुर्जे के लिए मैंने अपना प्रिय पुत्र हाथ से खो दिया है। कागज़ के टुकड़े को इतने मँहगे दामों मे किसने लिया होगा!

मन्दिर से लौट कर सारन्धा राजा चम्पतराय के पास गई और बोली—प्राणनाथ! आपने बचन दिया था, उसे पूरा कीजिए। राजा ने चौंक कर पूछा—तुमने अपना वादा पूराकर लिया? रानी ने वह प्रतिज्ञा-पत्र राजा को दे दिया। चम्पतराय ने उसे गौरव से देखा, फिर बोले—अब मैं चलूँगा और ईश्वर ने चाहा, तो एक बेर फिर शत्रुओं की खबर लूँगा; लेकिन सारन! सच बताओ, इस पत्र के लिए क्या देना पड़ा?

रानी ने कुण्ठित स्वर से कहा—बहुत कुछ।

राजा—सुनूँ?

रानी—एक जवान पुत्र।

राजा को बाण-सा लगा। पूछा—कौन? अंगदराय?

रानी—नहीं।

राजा—रतनशाह?

रानी—नहीं।

राजा—छत्रसाल?

रानी—हाँ।

जैसे कोई पक्षी गोली खाकर परों को फड़फड़ाता है और तब बेदम होकर गिर पड़ता है, उसी भाँति चम्पतराय पलंग से

उछले और फिर अचेत होकर गिर पड़े। छत्रसाल उनका परम प्रिय पुत्र था। उनके भविष्य की सारी कामनाएँ उसी पर अवलम्बित थीं। जब चेत हुआ, तो बोले—सारन, तुमने बुरा किया। अगर छत्रसाल मारा गया, तो बुन्देला-वंश का नाश हो जायगा।

अँधेरी रात थी। रानी सारन्धा घोड़े पर सवार चम्पतराय को पालकी में बैठाये किले के गुप्त मार्ग से निकली जाती थी। आज से बहुत काल पहले एक दिन ऐसे ही अँधेरी, दुःखमय रात्रि थी, तब सारन्धा ने शीतलादेवी को कुछ कठोर बचन कहे थे। शीतलादेवी ने उस समय जो भविष्यद्वाणी की थी, वह आज पूरी हुई। क्या सारन्धा ने उसका जो उत्तर दिया था, वह भी पूरा होकर रहेगा?

(९)

मध्याह्न था। सूर्यनारायण सिर पर आकर अग्नि की वर्षा कर रहे थे। शरीर को झुलसानेवाली प्रचण्ड, प्रखर वायु बन और पर्वतों में आग लगाती फिरती थी। ऐसा विदित होता था, मानो अग्निदेव की समस्त सेना गिरती हुई चली आ रही है। गगनमण्डल इस भय से काँप रहा था। रानी सारन्धा घोड़े पर सवार, चम्पतराय को लिए पश्चिम की तरफ़ चली जाती थी। ओरछा दस कोस पीछे छूट चुका था, और प्रतिक्षण यह अनुमान स्थिर होता जाता था कि अब हम भय के क्षेत्र से

बाहर निकल आए। राजा पालकी में अचेत पड़े हुए थे और कहार पसीने में सराबोर थे। पालकी के पीछे पाँच सवार घोड़ा बढ़ाये चले आते थे, प्यास के मारे सब का बुरा हाल था। तालू सूखा था। किसी वृक्ष की छाँह और कुएँ की तलाश में आँखें चारों ओर दौड़ रही थीं।

अचानक सारन्धा ने पीछे की तरफ़ फिर कर देखा, तो उसे सवारों का एक दल आता हुआ दिखाई दिया। उसका माथा ठनका कि अब कुशल नहीं है। ये लोग अवश्य हमारे शत्रु हैं। फिर विचार हुआ कि शायद मेरे राजकुमार अपने आदमियों को लिए हमारी सहायता को आ रहे हैं। नैराश्य में भी आशा साथ नहीं छोड़ती। कई मिनट तक वह इसी आशा और भय की अवस्था में रही। यहाँ तक कि वह दल निकट आ गया और सिपाहियों के वस्त्र साफ़ नजर आने लगे। रानी ने एक ठण्डी साँस ली, उसका शरीर तृणवत् काँपने लगा। यह बादशाही सेना के लोग थे।

सारन्धा ने कहारों से कहा—डोली रोक लो। बुन्देला सिपाहियों ने भी तलवारें खींच लीं। राजा की अवस्था बहुत सोचनीय थी; किन्तु जैसे दबी हुई आग हवा लगते ही प्रदीप्त हो जाती है, उसी प्रकार इस सङ्कट का ज्ञान होते ही उनके जर्जर शरीर में वीरात्मा चमक उठी। वे पालकी का परदा उठा कर बाहर निकल आये। धनुष-बाण हाथ में ले लिया; किन्तु

वह धनुष जो उनके हाथ में इन्द्र का वज्र बन जाता था; इस समय ज़रा भी न झुका। सिर में चक्कर आया, पैर थर्राये, और वे धरती पर गिर पड़े। भावी अमंगल की सूचना मिल गई। उस पङ्ख-रहित पक्षी के सदृश्य जो साँप को अपनी तरफ आते देखकर ऊपर को उचकता और गिर पड़ता है; राजा चम्पतराय फिर सँभलकर उठे और फिर गिर पड़े। सारन्धा ने उन्हें सँभाल कर बैठाया, और रोकर बोलने की चेष्टा की; परन्तु मुँह से केवल इतना निकला—प्राणनाथ! इसके आगे उसके मुँह से एक शब्द भी न निकल सका। आन पर मरनेवाली सारन्धा इस समय साधारण स्त्रियों की भाँति शक्तिहीन हो गई; लेकिन एक अंश तक यह निर्बलता स्त्री जाति की शोभा है।

चम्पतराय बोले—सारन! देखो हमारा एक और वीर ज़मीन पर गिरा। शोक! जिस आपत्ति से यावज्जीवन डरता रहा, उसने इस अन्तिम समय आ घेरा। मेरी आँखों के सामने शत्रु तुम्हारे कोमल शरीर में हाथ लगायेंगे, और मैं जगह से हिल भी न सकूँगा। हाय! मृत्यु, तू कब आयेगी। यह कहते-कहते उन्हें एक विचार आया। तलवार की तरफ़ हाथ बढ़ाया, मगर हाथों में दम न था। तब सारन्धा से बोले—प्रिये! तुमने कितने ही अवसरों पर मेरी आन निभाई है।

इतना सुनते ही सारन्धा के मुरझाए हुए मुख पर लाली दौड़ गई, आँसू सूख गए। इस आशा से कि मैं अब भी पति के कुछ

काम आ सकती हूँ, उसके हृदय में बल का संचार कर दिया। वह राजा की ओर विश्वासोत्पादक भाव से देखकर बोली—ईश्वर ने चाहा, तो मरते दम तक निबाहूँगी।

रानी ने समझा, राजा मुझे प्राण दे देने का संकेत कर रहे हैं।

चम्पतराय—तुमने मेरी बात कभी नहीं टाली।

सारन्धा—मरते दम तक न टालूँगी।

राजा—तब यह मेरी अन्तिम याचना है, इसे अस्वीकार न करना।

सारन्धा ने तलवार को निकालकर अपने वक्षःस्थल पर रख लिया और कहा—यह आपकी आज्ञा नहीं है, मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि मरूँ तो यह मस्तक आपके श्री चरणों पर हो।

चम्पतराय—तुमने मेरा मतलब नहीं समझा। क्या तुम मुझे इसलिए शत्रुओं के हाथ में छोड़ जाओगी कि मैं बेड़ियाँ पहने हुए दिल्ली की गलियों में निन्दा का पात्र बना घुमाया जाऊँ?

रानी ने जिज्ञासा-दृष्टि से राजा को देखा। वह उनका मतलब न समझी।

राजा—मैं तुमसे एक वरदान माँगता हूँ।

रानी—सहर्ष माँगिए।

राजा—यह मेरी अन्तिम प्रार्थना है। जो कुछ कहूँगा, करोगी ?

रानी—सिर के बल करूँगी।

राजा—देखो, तुमने बचन दिया है, इनकार न करना।

रानी—(काँपकर) आपके कहने की देर है।

राजा—अपनी तलवार मेरी छाती में चुभा दो।

रानी के हृदय पर वज्रपात-सा हो गया। बोली—जीवन-नाथ !—इसके आगे वह और कुछ न बोल सकी—आँखों में नैराश्य छा गया।

राजा—मैं बेड़ियाँ पहनने के लिए जीवित रहना नहीं चाहता।

रानी—हाय, मुझसे यह कैसे होगा !

पाँचवाँ और अन्तिम सिपाही धरती पर गिरा। राजा ने झुँझला कर कहा—इसी जीवन पर आन निभाने का गर्व था ?

बादशाह के सिपाही राजा की तरफ लपके। राजा ने नैराश्य-पूर्ण भाव से रानी की ओर देखा। रानी क्षण भर अनिश्चित-रूप से खड़ी रही; लेकिन संकट में हमारी निश्चयात्मक शक्ति बलवान हो जाती है। निकट था कि सिपाही लोग राजा को पकड़ लें कि सारन्धा ने दामिनी की भाँति लपककर अपनी तलवार राजा के हृदय में चुभा दी।

प्रेम की नाव प्रेम-सागर में डूब गई। राजा के हृदय से रुधिर की धारा निकल रही थी; पर चेहरे पर शान्ति छाई हुई थी।

कैसा करुण दृश्य है! वह स्त्री जो अपने पति पर प्राण देती थी, आज उसकी प्राणघातिका है। जिस हृदय से आलिङ्गित हो वह अपने आपको संसार में सबसे अधिक भाग्य-शालिनी समझती थी; जो हृदय उसकी अभिलाषाओं का केन्द्र था, जो हृदय उसके अभिमान का पोषक था, उसी हृदय को आज सारन्धा की तलवार छेद रही है। किस स्त्री की तलवार से ऐसा काम हुआ है!

आह! आत्माभिमान का कैसा विषादमय अन्त है। उदय-पुर और मारवाड़ के इतिहास में भी आत्म-गौरव की ऐसी घट-नाएँ नहीं मिलतीं।

बादशाही सिपाही सारन्धा का यह साहस और धैर्य देख कर दंग रह गये। सरदार ने आगे बढ़कर कहा—रानी साहबा! खुदा गवाह है; हम सब आपके गुलाम हैं। आपका जो हुक्म हो, उसे ब-सरो-चश्म बजा लायेंगे।

सारन्धा ने कहा—अगर हमारे पुत्रों में से कोई जीवित हो, तो ये दोनों लाशें उसे सौंप देना।

यह कह कर उसने वही तलवार अपने हृदय में चुभा ली जब वह अचेत होकर धरती पर गिरी, तो उसका सिर राजा चम्पतराय की छाती पर था।

पंथ की प्रतिष्ठा

लेखक—श्रीयुत सुदर्शनजी,

[श्रीयुत सुदर्शन पंजाब निवासी हैं। आज कल हिन्दी के इने-गिने कहानी लेखकों में आपकी गणना होती है पहले आप उर्दू में लिखा करते थे, परन्तु बाद को हिन्दी की ओर आपका झुकाव हुआ। हिन्दी में आपने काफ़ी संख्या में कहानियाँ लिखी हैं। सुदर्शन सुधा' "सुप्रभात" आपकी कहानियों के संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। आपकी भाषा मुहावरेदार उर्दू-हिन्दी मिश्रित बोल-चाल की है। आपकी कहानियों की विशेषता चरित्र-चित्रण और कथोपकथन है। आप उत्कृष्ट श्रेणी के कहानी लेखक माने जाते हैं।]

—o—

(१)

यह वह समय था जब पंजाब में महाराजा रणजीतसिंह का राज्य था। उनके भय से कड़े से कड़े हृदय भी पानी-पानी हो जाते थे। महाराजा ने किसी पाठशाला में शिक्षा नहीं पाई,

किसी गुरु के सम्मुख सिर नहीं झुकाया। वह पश्चिमी शिक्षा से परिचित न थे। उनको कदाचित यह भी ज्ञान न था कि पालिटिक्स शब्द के अर्थ क्या हैं। परन्तु ऐसी अवस्था में भी उन्होंने जिस शान के साथ राज्य किया है, उसे इतिहास लेखक दृष्टिच्युत नहीं कर सकता। इसका प्रधान कारण यह था कि वे न्याय के सम्मुख व्यक्तित्व की परवा करना शासन के लिये घातक समझते थे। और पथ की प्रतिष्ठ का बड़ा ध्यान रखते थे। यहाँ तक कि एक बार उन्होंने न्याय के लिये अपने आपको भी पंथ के चरणों में डाल दिया था। यह घटना उनके जीवन में एक चमकते सितारे की स्थिति रखती है।

(२)

महाराजा रणजीतसिंह में कई गुण थे, परन्तु वे देवता न थे। उनके विचार बहुत ऊँचे थे, और हृदय भलाई का स्रोत। वे अपने धर्म में बहुत पक्के थे। परन्तु उनमें एक दोष भी था, सौंदर्य्य की चोट सहन न कर सकते थे। उनकी आयु का पचासवाँ वर्ष था, लाहौर में एक परम सुन्दरी वेश्या मोरां की धूम मची। पहले-पहले उसका नाम थोड़े से गिने-चुने लोगों ही में रहा। परन्तु कुछ ही दिनों में यह हाल हुआ कि जिस महफ़िल में मोरां न आती उसका रङ्ग न जमता। वह संगीत-कला में इतनी निपुण न थी, न उसका कंठ ऐसा सुरीला था। प्रायः लोग कहते थे, कि मोरां अशुद्ध गाती है, परन्तु फिर भी

उसकी तानों में वह मोहिनी, वह मिठास, वह रस भरा हुआ था कि महफ़िल लोट-पोट हो जाती थी। उसके स्वर में जादू था शब्दों में कोमलता, परन्तु इससे भी अधिक लोगों को उसका रूप रङ्ग प्यारा था। उसकी उम्र पन्द्रह-सोलह वर्ष से अधिक न हुई थी। उसका रङ्ग सफ़ेद पत्थर की तरह गोरा था नयन कटार के समान तीखे। जब महफ़िल में आती तो दर्शकों में धूम मच जाती। होते-होते यह समाचार महाराज के कानों तक पहुँचा।

वह समय आजकल के समय से न्यारा था। उस समय नाच और मस्त-मतवालों की महफ़िलें सभ्यता के विरुद्ध न समझी जाती थीं। बड़े-बड़े प्रतिष्ठित लोग अपने मकानों पर रसिक समाज जमाया करते, तो इन अप्सराओं को भी अपना कला-कौशल दिखलाने का अवसर दिया जाता। इससे उनका मान बढ़ जाता था। महाराज ने मोरां के विश्व-विजयी सौन्दर्य्य की धूम सुनी तो अधीर हो गये, और हुकम दिया कि नाच का जल्सा बड़े समारोह के साथ मनाया जावे। हुक्म की देर थी, क़िले में जल्से की तैयारियाँ होने लगीं। दर्बार सज गये, लाहौर में नई चहल-पहल दिखाई देने लगी। ऐसा जान पड़ता था, मानों कोई विशेष उत्सव होने वाला है। पञ्जाब के रसिक लोग दूर-दूर से लाहौर में इस तरह आने लगे जिस तरह दीपक पर पतङ्ग टूटते हैं।

(२)

उस दिन जल्सा शुरू हुए एक सप्ताह व्यतीत हो चुका था। रात्रि का समय था, १२ बज चुके थे। जल्से के मुखिया ने उठ कर मीरां का नाम लिया, लोग आगे खसकने लगे। सारे समाज में ऐसी खलबली मच गई मानों समुद्र में एकाएक ज्वार आ गया हो। मीरां घुँघुरुओं की झनकार के साथ आगे बढ़ी। सोती हुई आँखें जाग पड़ीं, सामने एक शर्मीली लड़की खड़ी थी। महाराज ने तीव्र दृष्टि से उसकी ओर देखा। उन्होंने सुन्दर से सुन्दर स्त्रियाँ देखी थीं परन्तु ऐसी सुन्दरी उनकी आँखों से आजतक न गुजरी थी; वे सँभल कर बैठ गये। मीरां गाने लगी—

कान्हा ! रङ्ग न मो पै डार।

इस स्वर में जादू था। देखने में ऐसा प्रतीत होता था, कि लोग इतने दिन सुन-सुन कर उकता गये हैं, परन्तु मीरां के स्वर में ऐसा आकर्षण था कि लोग उसको सुन कर अपने आपको भूल गए। चारों ओर सन्नाटा था, सुई भी गिरती तो आवाज़ आ जाती। दर्शक साँस रोके बैठे थे। एक मीरां का स्वर था जो इस निस्तब्धता की नदी पर लहर मार रहा था।…

कान्हा रंग न मो पै डार।

बृन्दावन की कुञ्जगलीमें तन मन दीन्यो वार। कान्हा रंग०

सुना हुआ था कि सुन्दरता में जादू है, इस समय इसकी

सचाई सामने आ गई। बीन का शब्द सुनकर सर्प नाचने लग जाता है, यहां तो स्त्री गा रही थी। सारा रङ्गभवन मस्त हो गया। चारों ओर निस्तब्धताका साम्राज्य था। ऐसा प्रतीत होता था। मानों किसी ने महफिल पर मन्त्र डाल दिया है। रात्रि का समय, सन्नाटे का आलम, सजा हुआ दरबार, और एक हृदय में उतर जाने वाली आवाज़—

कान्हा रङ्ग न मो पै डार।

महाराज अपने आपको भूल गये। उनका हृदय हिचकोरे लेने लगा, जैसे कमल जल में तैरता है। कुछ क्षणों तक ऐसा प्रतीत हुआ मानों वे किसी नदी में बहते हुए चले जा रहे हैं, और किसी सुदूर देश की अपरिचित भूमि में कोई सौन्दर्य्य की देवी अपनी मस्त तानों से चन्द्रमा की ज्योति को अपनी ओर बुला रही है, और महाराज बेबस हुए उसके दर्शनों की उत्कण्ठा से खिंचे चले जा रहे हैं। एकाएक महाराज की आंखें खुलीं। देखा, वही महफिल है वही रङ्ग, उसी तरह लोग झूम रहे हैं। और उसी तरह मीरां गा रही है—

कान्हा रंग न मो पै डार।

एकाएक गाना बन्द हो गया, मीरां मूर्त्तिवत् चुपचाप खड़ी थी। वह इतनी सीधी-सादी और भोली-भाली देख पड़ती थी कि लोगों को इस बात में सन्देह होने लगा, कि गानेवाली यही थी या कोई और। परन्तु उसकी आवाज लोगों के कानों में

अभी तक गूंज रही थी। लोगों ने उसकी ओर देखकर आंखों ही आंखों में उसकी प्रशंसा की, परन्तु महाराज ने हृदय लुटा दिया। एक सप्ताह के बाद मालूम हुआ कि महाराज ने मोरां के साथ व्याह कर लिया है।

३

इस समाचार से सिक्खों में खलबली मच गई, जैसे समुद्र में तूफ़ान आ जाता है। इससे पहले महराज कई व्याह कर चुके थे, और सिक्खों के एक प्रतिनिधि-दल ने उनकी सेवा में उपस्थित होकर प्रार्थना की थी, कि आपके नित नए व्याहों से प्रजा के आचार पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है, अतएव आप अब कोई व्याह न करें। महाराज ने इसका जो उत्तर दिया था वह ऐसा समुचित और सभ्यता से भरा हुआ था कि लोग आनन्द से उछल पड़े थे। महाराज ने कहा था, खालसा जी! मैं आपका राजा हूँ, राजा का काम प्रजा की भलाई करना है। यदि मेरे किसी काम से प्रजा अप्रसन्न होती हो तो मैं वह काम कभी नहीं करूंगा। इस उत्तर से लोगों के हृदय पुलकित हो गए थे। उन्हें यह आशा न थी महाराज उनकी सदिच्छाओं को इस प्रकार पावों तले कुचल देंगे। परन्तु लोग जो न चाहते थे वह हो गया, महाराज ने व्याह कर लिया। सिक्खों का क्रोध भड़क उठा। स्थान स्थान पर जल्से होने लगे, जिनमें जनता की ओर से अप्रसन्नता के साथ उत्तेजना देने वाली वक्तृताएं होने लगीं,

और स्पष्ट रूप से कहा जाने लगा कि महाराज सिंहासन के योग्य नहीं रहे क्योंकि उन्होंने पंथ का अपमान किया है। कुछ लोग कहते थे, ऐसे कामी का मुख देखना पाप है। एक जोशीले सिक्ख ने पंथ को सम्मति दी कि अपनी सेना सजानी आरम्भ कर दो और रणजीत सिंह के साथ युद्ध छेड़ दो। उड़ते-उड़ते यह समाचार अकाली फूलासिंह तक भी पहुँचा। उस समय खालसा के धार्मिक-जगत् में उनका पद सबसे ऊंचा था। वह ग्रन्थ साहब का पाठ करने वाले अकाल पुरुष के प्यारे थे, सांसारिक झमेलों से उनको अधिक संसर्ग न था। परन्तु जब महाराज रणजीतसिंह को देश सम्बन्धी कोई उलझन आ पड़ती थी तो अकाली फूलासिंह झंडा लेकर रणभूमि में निकल आते थे, और तूफान में फंसी हुई नौका को शान्ति के तीर पर लगा देते थे। वे बड़े शक्तिशाली थे। महाराज रणजीतसिंह की आज्ञा टल सकती थी, परन्तु अकाली फूलासिंह की आज्ञा पत्थर की लकीर थी।

मगर फिर भी महाराज महाराज ही थे, सेना उनके इशारे पर प्राण देती थी। कामदेव का तीर खाकर उन्होंने इसी शक्ति की शरण ली थी।

अकाली फूलासिंह ने यह समाचार सुना तो उनका कोपानल भड़क उठा और झंडा लेकर खड़े हो गये। इस समय उनके नेत्रों में रक्त उछलता था, हृदय में क्रोध धसकता था। गुरु-

द्वारों के नाम आज्ञा लिख दी, कि महाराज रणजीतसिंह की अरदास स्वीकार न की जाय। यह आज्ञा सिक्खों की क्रोधाग्नि पर ईंधन का काम दे गई। राज्य की दीवारें काँपने लगीं। महाराज को भय हुआ कि कहीं जीवन भर की कमाई पर मट्टी न पड़ जाय, हृदय में पश्चात्ताप करने लगे, कि बुढ़ापे में क्या कर बैठे। परन्तु पश्चात्ताप व्यर्थ था, तीर कमान से निकल चुका था। अब उसका लौटना असम्भव था परन्तु फिर भी धीरज के साथ हवा का रुख देखते रहे, कि कदाचित् थम जाय। पर जब इस हवा ने आँधी का रूप धारण कर लिया, तो उनका हृदय भी काँपने लगा, जिस प्रकार तूफान में नौका काँपती है। आशा को निराशा ने ठोकर लगाई। घबराये हुए अकाली फूलासिंह की सेना में पहुँचे, और बोले "यह नौका अब आपकी ही दया से बच सकती है, मेरी भुजाओं में बल नहीं कि इस तूफान को रोक सकूं।"

फूलासिंह बैठे थे, खड़े हो गए और क्रोध से बोले "यह कुकर्म क्यों किया था?"

महाराज को यह आशा न थी, कि अकाली फूलासिंह ऐसा उत्तर देंगे। उनको आशा थी कि मेरा एक बार जाकर नम्रता के दो शब्द कह देना ही बहुत है, लोहा मोम हो जायगी। परन्तु आज रणजीतसिंह के प्रताप की अग्नि ठण्ढी हो चुकी थी, उसमें गर्मी न थी, फूलासिंह का कोरा उत्तर सुन कर उनके नेत्रों में जल भर आया, भराए हुए कण्ठ से बोले —

"अब तो जो कुछ होना था हो गया।"

"फिर मुझसे क्या चाहते हो?"

"मेरी अरदास स्वीकार नहीं होती।"

"और होनी भी नहीं चाहिये।"

महाराज ने हाथ जोड़ कर सिर झुका दिया। उस समय ऐसा प्रतीत होता था, मानों राजमुकुट सरल सदाचार के चरणों में लोट रहा है। फूलासिंह ने उत्तर दिया "यह अपराध जाति का अपराध है, इसे जाति ही क्षमा कर सकती है।"

"मैं इसके लिए भी उद्यत हूँ।"

"तो कल अमृतसर आ जाओ, निपटारा हो जायगा।"

महाराज की आँखों में अपना अपमान मूर्त्तिवत नाचने लगा। सोचते थे, किस तरह भरी हुई सङ्गत में अपने अपराध को अंगीकार करेंगे। जो सर सदैव अभिमान से उन्नत रहा करता है, वह लज्जा से किस तरह भूमि की ओर देखेगा। जो जिह्वा सदैव आज्ञा करती रही है, वह नम्रता और विनती के शब्द कैसे कहेगी इन विचारों ने उनके हृदय में आगसी लगा दी, धुआँ नेत्रों से नीर के रूप में बहने लगा, रोते हुए बोले—

"महाराज मेरी मान-मर्यादा नष्ट हो जायगी।"

फूलासिंह ने धीरता से उत्तर दिया—

"धर्म के सम्मुख राजा और रङ्क एक समान है।।"

"तो इसके सिवा और कोई उपाय नहीं ?"

"नहीं।"

"मुझे संगत में आना पड़ेगा।"

"हाँ।"

रणजीतसिंह के विचारों का पासा पलटा। सोचने लगे, यह कैसा सच्चरित्र पुरुष है। ऐसा ही दृढ़ है, जैसे जल में शिला। जल की तरंगें आती हैं और टकरा कर पीछे हट जाती हैं, परन्तु शिला उसी प्रकार खड़ी रहती है, उसका धैर्य्य तनिक भी विचलित नहीं होता। इसी प्रकार यह न्यायनिष्ठ और ईश्वर-भक्त भी दृढ़ विचार रखता है, जो सिंहासन के साथ टक्करें मार रहा है, और फिर अपना कोई स्वार्थ नहीं, केवल न्यायमात्र का प्रश्न है। उन्होंने मन ही मन अकाली प्रणाम किया और भीगी हुई पलकों को पोंछते हुए चले गए।

(४)

दोपहर का समय था, रणजीतसिंह महल में पहुँचे। इस समय उनका मुख उदास था, चित्त दुखी। मोरां इठलाती हुई सामने आई, मगर उनको देख कर ठिठक गई, और आगे न बढ़ सकी। भय ने पावों में जञ्जीर डाल दी थी।

एकाएक महाराज ने सिर उठाया, और क्षीण स्वर से कहा "मोरां।"

मोरां की नस नस में अभिमान का भाव लहरें मारने लगा। मुस्कराती हुई बोली।

"महाराज।"

"तुम्हारे कारण मुझे लज्जित होना पड़ा।"

मोरां का कलेजा धड़कने लगा, मुँह का रङ्ग सफ़ेद हो गया। घबड़ा कर बोली—

"आप क्या कह रहे हैं ?"

"तुम्हारे कारण मुझे लज्जित होना पड़ा।"

क्यों ?"

"मैं अमृतसर जा रहा हूँ। वहाँ मुझे भरी संगत के सामने कहना पड़ेगा, कि यह व्याह करके मैंने अपराध किया है। अब जो दण्ड मुझे संगत दे, उसे स्वीकार करूँगा।"

"लिखित क्षमा माँगने से काम नहीं चल सकता ?"

"नहीं, अकाली फूलासिंह नहीं मानता।"

"नम्रता सब कुछ कर सकती है।"

"परन्तु अकाली फूलासिंह को नहीं झुका सकती।"

"राज्य की शक्ति...

............उससे हार चुकी है।"

मोरां ने एक सुन्दर कटाक्ष से कहा "क्या वह मनुष्य नहीं हैं।"

महाराज ने उत्तर दिया "ऐसा ही जान पड़ता है, कि वह मनुष्य नहीं। अब मुझे संगत जो दण्ड देगी वह स्वीकार करना पड़ेगा। अन्यथा राज्य छिन जाने का भय है।"

मीरां के हृदय में एक सन्देह सा उठा। इससे मस्तिष्क खौलने लगा, रुक-रुक कर बोली "क्या दण्ड मिलेगा ?

"यह कौन कह सकता है।"

"और जो दण्ड आपको दिया जायगा उसे आप स्वीकार कर लेंगे।"

"अवश्य।"

"यदि मुझे छोड़ना पड़े तो…………

महाराज के हृदय पर किसी ने हथोड़ा मार दिया, कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहे। ऐसा प्रतीत होता था, मानों दो विरोधी शक्तियाँ आपस में लड़ रही हैं। ठण्ढी साँस भर कर बोले "मीरां ! मुझे तुमसे प्रेम नहीं प्रत्युत नेह है। मैंने तुम्हारे लिये वह किया जिसने मुझे सारे देश में मुँह दिखाना कठिन कर दिया। मेरा हृदय तुम्हारा चाहने वाला पतंगा है। परन्तु ऐसा होते हुए भी यदि पंथ की आज्ञा यह होगी कि मीरां को छोड़ दो तो मैं अस्वीकार न कर सकूँगा।"

मीरां के मुख पर लाली दौड़ गई। नेत्रों में जल के बिन्दु छलकने लगे, मानो गुलाब के फूल पर वृष्टि हो गई हो, परन्तु

महाराज पर कुछ प्रभाव न हुआ, वे उसी प्रकार स्थिर बैठे रहे।

"यदि संगत की यही आज्ञा हुई तो छोड़ दूँगा।"

"बड़े निठुर हो।"

"यदि तुम मेरे स्थान पर होतीं तो वह बात न कहतीं। मेरे मुख की ओर देखो, यह हृदय का दर्पण है।"

मीरां रोने लगी, परन्तु महाराज के नेत्रों में आँसू न थे।

(५)

दूसरे दिन तख्त अकाल बुङ्गा में संगत लगी हुई थी कि एक प्रतिष्ठित पुरुष सफेद वस्त्र पहने सफेद साफ़ा गले में डाले जूतियों में खड़ा हो गया और हाथ जोड़ कर बोला—"मैं पंथ का अपराधी हूँ।"

अकाली फूलसिंह ने पूछा "तुम कौन हो?"

"रणजीतसिंह।"

संगत की आँखें उधर उठ गईं। क्या यही वह रणजीतसिंह है, जिसके दबदबे से सारा देश काँप रहा है। अकाली ने पूछा—"क्या कहते हो?"

"मैं तनखवाहिया हूँ।"

"तुमने क्या अपराध किया है?"

"मैंने एक वेश्या से व्याह कर लिया है।"

"इससे पहले भी तुम्हारा कोई व्याह हुआ है ?"

"हाँ हुए हैं।"

"कितने ?"

"चौदह।"

"और यह पन्द्रहवाँ है ?"

तुमसे कहा गया था कि अब व्याह न करना, प्रजा पर बुरा प्रभाव पड़ता है ?"

"हाँ महाराज जी कहा गया था।"

"फिर तुमने इसका ख़्याल क्यों न किया ?"

"मैं पागल हो गया था।"

"अब क्या चाहते हो ?"

"मुझ पर धर्मानुसार दण्ड लगाया जाय, और मेरी अरदास स्वीकार की जाय।"

"संगत जो दण्ड देगी, उसे स्वीकार करोगे ?"

"सिर आँखों से।"

अकाली फूलासिंह ने संगत में से चार प्रतिष्ठित पुरुषों को चुन लिया, और सलाह सम्मति के पश्चात् खड़े हुए। संगत अवाक् होकर सुनने लगी। फूलासिंह ने कहा —

"खालसा जी ! यह महाराज रणजीतसिंह हैं। आपने अपने जीवन मरण इनके हाथ में सौंप रखे हैं। इनका धर्म यह है, कि इस धरोहर की रक्षा में अपने प्राणों तक की आहुति

कर दें, और सिद्ध कर दें कि देश ने इन पर विश्वास करने में भूल नहीं की। इनके प्रत्येक कार्य्य का, प्रत्येक चेष्टा का, और प्रत्येक शब्द का प्रजा पर प्रभाव पड़ता है, अतएव उन्हें उचित है कि अपनी प्रत्येक बात में सावधान रहें। यह अपने आप राजा नहीं बन सकते थे, इन्हें राजा आपने बनाया है। यह अपने आप इस उच्च पदवी पर नहीं पहुंच सकते थे, इन्हें इस पदवी पर आपने चढ़ाया है। यह आपके भाग्य-स्वामी आप नहीं बन सकते थे, इन्हें यह व्यवस्थित-अधिकार आपने दिया है। अतएव आपको अधिकार है, कि इनके प्रत्येक कर्म्म का इनसे उत्तर माँगें। इनको कहा गया, कि आपको इतने व्याह कर लेना न्याय-विरुद्ध है, परन्तु इन्होंने परवा न की। हम उस देश के रहने वाले हैं, जहाँ के राजा रामचन्द्र जी ने प्रजा के आचार की रक्षा के लिये अपनी निर्दोष पत्नी को बनवास दे दिया था। अतएव हम इनसे भी इस बात की आशा रखते थे कि यह हमारी भावनाओं की रक्षा करेंगे; परन्तु इन्होंने हमारी कामनाओं को पददलित कर दिया और जाति के निर्णय के विरुद्ध अनेक रानियों के होते हुए एक वेश्या से व्याह कर लिया।"

महाराज के लिये एक एक शब्द बर्छी था, परन्तु लोगों के चेहरों पर प्रसन्नता खेल रही थी। वे अकाली की वक्तृता पर मतवालों के समान झूम रहे थे, कैसी वीरता है जो भय और दबदबा दोनों से ऊपर है और प्रतिरोध के दाँतों में सत्य के मार्ग

पर बढ़ी चली आती है। युद्धक्षेत्र में तलवार चलाना सहज है, परन्तु सम्बन्ध का विचार किये बिना, एक अपराधी की नम्रता देखने के पश्चात् उसके साथ सच्चा-सच्चा न्याय करना सहज नहीं। लोगों ने जोश से कहा, "सत श्री अकाल।"

इस शब्द से महाराज का हृदय बैठ गया परन्तु अकाली फूलासिंह पर कुछ प्रभाव न पड़ा। उन्होंने पूर्ववत् बोलते हुए कहा —

"खालसा जी ! प्रजा पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ने की संभावना है। अतएव पाँच प्यारों की कमेटी ने निश्चय किया है, कि महाराज इक्कीस दिन संगत की जूतियाँ साफ करें, इक्कीस दिन संगत के लिये अपने हाथ से दातून काटकर लायें, सवा-लाख रुपया पन्थ के लिये दंड दें ; और पेड़ के साथ बाँध कर इनको एक सौ कोड़े लगाये जायँ, जिससे इनको भविष्य के लिए शिक्षा मिल जाय। क्या यह फैसला संगत को स्वीकार है ?"

संगत ने एक स्वर से कहा "स्वीकार है।" "क्या यह फैसला रणजीतसिंह को स्वीकार है ?"

रणजीतसिंह ने सिर झुका कर कहा स्वीकार है।"

"तो वस्त्र उतार दो, कोड़े संगत के सामने लगाये जायँगे।"

(६)

यह शब्द रणजीतसिंह पर बिजली बन कर गिरे। उनको

यह आशा न थी कि फूलासिंह इतनी दूर तक पहुँच जायँगे। वे समझते थे, कि केवल दण्ड देकर छुटकारा हो जायगा, अथवा अनुनय विनय कर देने से लोगों का क्रोध दूर हो जायगा। मैं कोई साधारण अपराधी नहीं हूँ, शासन की डोर तो मेरे ही हाथ में है। अतएव जब उन्होंने दण्ड के पहले तीन भाग सुने, तो उनको तनिक भी विस्मय न था; परन्तु दण्ड का चौथा भाग सुन कर चकित रह गए, और उनको सन्देह होने लगा कि कहीं मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ ? परन्तु जब हुक्म हुआ कि वस्त्र उतार दो, दण्ड इसी समय मिलेगा, तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। यह अपमान उस स्वप्न का फलादेश था जिसके लिए महाराज तो क्या कदाचित् लोग भी तैयार न थे।

तैयार न थे, यह सत्य है, परन्तु इसलिये नहीं कि वह इस दण्ड को अधिक समझते थे, प्रत्युत इसलिए कि उनको अकाली फूलासिंह से भी इसकी आशा न थी। इस साहस ने लोगों के हृदय में अकाली फूलासिंह की प्रतिष्ठा और भी बढ़ा दी। उन्होंने चिल्लाकर कहा "सत् सिरी अकाल"। यह ध्वनि एक प्रकार से महाराज के दण्ड की समर्थना थी।

रणजीतसिंह ने वस्त्र उतार दिये, और अत्यन्त नम्रता से कहा,

"मैं तैयार हूँ।"

फूलासिंह ने एक मनुष्य को संकेत किया। उसने रणजीत सिंह को वृक्ष के साथ बाँध दिया, और कोड़ा तैयार करने लगा। इस समय लोगों की साँस रुकी हुई थी। और उनपर निस्तब्धता छा रही थी। महाराज की ओर से लोगों के हृदय में जो क्रोध था, इस दृश्य को देखकर दया में परिणत होगया। गर्व और अभिमान के सैकड़ों शत्रु हैं; परन्तु बेबसी का शत्रु कोई नीच ही हो सकता है। यदि महाराज इस आज्ञा को मानने से इनकार करते, तो संभव है लोगों का क्रोध और भी भड़क उठता; परन्तु इस विनीत-भाव ने उनके अपराध का महत्व घटा दिया।

पञ्चायत का एक मनुष्य खड़ा होकर बोला, "एक......कोड़ा मारनेवाला तैयार हो गया। उसने कहा "दो......लोगों के कलेजे मुँह तक आ गए। उनकी इच्छा हुई, कि इस समय कोई चमत्कार हो जाय। कोई मानवी-शक्ति से बाहर घटना हो जाय, और महाराज इस अपमानजनक दण्ड से बच जायँ। इस समय उनके गुण अपने पूर्ण उत्कर्ष के साथ लोगों के सम्मुख प्रकट हुए। आवाज आई तीन" लोगों के शरीर में बिजली दौड़ गई। महाराज ने नेत्र बन्द कर दिए। पर अभी कोड़ा मारनेवाले का हाथ हिला भी नहीं था, कि अकाली फूलासिंह की गर्जती हुई आवाज ने कहा ठहर जाओ।

७

लोगों के हृदय आनन्द से उछलने लगे। सहस्रों आँखें

अकाली फूलासिंह के चेहरे पर जम गईं। महाराज आश्चर्य से देखने लगे, कि अब क्या होने वाला है!

अकाली फूलासिंह बोले "खालसा जी! इससे पहले कि अपराधी को दण्ड दिया जाय, मैं आपसे एक और प्रार्थना करना चाहता हूँ। यह मनुष्य जो आपके सामने बेबसी की जीवित जागृत मूर्ति बना खड़ा है, महाराज रणजीतसिंह है, जिसके हाथ में शक्ति आज पुतली बनकर नाच रही। यह वह मनुष्य है, जिसके आदेश से रक्त की नदियाँ बह सकती हैं, जिसके संकेत से हत्या का बाजार गर्म हो सकता है। यह वह मनुष्य है, जिसकी कुपित दृष्टि से जलालाबाद की दीवारें काँप रही हैं, जिसके जेनरल का नाम लेकर सरहद्दी (सीमा-प्रांत की) स्त्रियाँ अपने रोते हुए बच्चों को चुप कराती हैं। ऐसा शक्तिशाली पुरुष आपके सम्मुख वृक्ष के साथ बँधा हुआ है, मानो बेबसी की मूर्ति है। क्या आप यह अनुभव नहीं करते कि इसको दण्ड मिल चुका है। कोड़े का दण्ड निचली कक्षा के लिए है, उच्चकोटि के लिए यह दण्ड किसी अवस्था में भी उचित नहीं हो सकता, और फिर यह तो स्वयं पञ्जाब के महाराज हैं। इनका वृक्ष के साथ अपने आपको बँधवा लेना प्रकट करता है कि इन्होंने संगत की आज्ञा को स्वीकार कर लिया है। पंचायत का मनुष्य कोड़े मारने की आज्ञा देता है, 'एक' 'दो' कहा जा चुका था 'तीन' का शब्द मुख से निकल चुका था, कोड़ेवाला तैयार था। अर्थात् जहाँ तक महाराज का सम्बन्ध है, उनको अधिक से अधिक दण्ड

मिल चुका है। अब प्रश्न यह है, कि क्या हम इतने ढीठ होचुके हैं कि अपने महाराज से, जो हमारी आज्ञा का यहाँ तक सम्मान करते हैं, इस प्रकार का व्यवहार करेंगे। अतएव खालसाजी! मेरी सम्मति यह है कि आप कोड़ों का दण्ड क्षमा कर दें।"

लोगों ने वह सुना जिसकी उन्हें इच्छा थी, वह आनन्द से झूमने लगे। 'सतसीरी अकाल' की गगनभेदी ध्वनि हुई। अकाली की सम्मति पास हो गई। उन्होंने आज्ञा दी, महाराज को खोल दिया जाय।

आज्ञानुसार महाराज को खोल दिया गया, वे शनैः शनैः आगे बढ़े, और फूलासिंह के चरणों से लिपट गए। फूलासिंह ने उन्हें उठाकर गले से लगा लिया। इस समय महाराज के नेत्रों में आँसू थे, मुखपर तेज। वे बालकों के समान सिसकियाँ भरते हुए बोले, "आपने मुझे बतला दिया है कि पंथ के सामने मेरी भी कोई गिनती नहीं है।"

अकाली ने उत्तर दिया, "आपने जिस विनय से अपने आपको न्याय के चरणों में फेंका था, वह पवित्र दृश्य मुझे आजीवन नहीं भूल सकता। भारत की भावी संतति आपके इस साखे पर श्रद्धा के फूल चढ़ायगी।"

यह कहते-कहते उनके भी नेत्रों में आँसू भर आये।

कमलावती

श्री पदुम लाल पुन्नालाल बख्शी बी० ए०

[आप खैरागढ़ स्टेट म० प्रा० के निवासी और 'सरस्वती' मासिक पत्रिका के सम्पादक रह चुके हैं। आज कल आप अपने निवास-स्थान के पास ही राजनाँदगाँव स्टेट में शिक्षक हैं। आपकी शैली बहुत ही प्राञ्जल हैं और भाषा प्रौढ़। आपने प्राच्य और पाश्चात्य-साहित्य का गहरा अध्ययन किया है आप सुकवि और कहानी लेखक भी हैं।]

—:o:—

"रुस्तम !"

"जनाब !"

"क्या यह वही स्थान है ?"

"जी हाँ, यह वही गुर्ज्जर-प्रदेश है।"

"रुस्तम! क्या सत्य ही यह गुर्ज्जर-प्रदेश है? क्या हम लोगों ने इसी को ध्वंस करने का विचार किया है? क्या इसी के लिये हमने यह छद्म-वेष रचा है? रुस्तम! सच कहो, क्या यही समुद्र-मेखला, गिरि-किरीटिनी, गुर्ज्जर-भूमि है?"

"हुजूर जो अनुमान करते हैं वह सत्य है। कृष्ण वर्ण छाया के सदृश सन्मुख जो देख पड़ती है वही गुर्ज्जर की तटभूमि है।"

"रुस्तम, इन पर्वत-श्रेणियों की शोभा तो देखो; कितने ऊँचे हैं! जान पड़ता है कि गगन-नीलिमा को स्पर्श करने के लिये ये गर्व-भाव से इतने उन्नत हो गये हैं। कैसा अलौकिक सौन्दर्य है! ऐसा दृश्य हमने अफ़गानिस्थान में कभी नहीं देखा था। रुस्तम, क्या यह स्वर्ग-भूमि नहीं है? इसके मलय-प्रवाह में कैसी संजीवनी शक्ति है! चन्द्र-ज्योत्स्ना कैसी उज्जवल और स्निग्ध है!"

सन्ध्या का समय है। गुर्ज्जर-तट की ओर एक नाव धीरे-धीरे जा रही है। माँझी हिन्दू हैं और आरोहीगण हिन्दू-वेषी मुसलमान। संख्या में वे लोग ६ हैं। चार तो नाव के भीतर थे, और दो ऊपर बैठे कथोपकथन कर रहे थे। पाठकों ने अभी उन्हीं लोगों का वार्ता-लाप सुना है।

जिस समय की कथा हम लिख रहे हैं उस समय ग़ज़नी-पति सुलतान महमूद भारतवर्ष पर आक्रमण-पर-आक्रमण कर

रहा था। भारत के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध नगरों का ध्वंस कर, इस बार उसने गुर्ज्जर पर कठोर दृष्टिपात किया था। गुर्ज्जर में सोमनाथ का प्रसिद्ध मन्दिर था। सुलतान उसी को हस्तगत करना चाहता था; पर उसका लेना सहज नहीं था। उसके अधीश्वर थे, गुर्ज्जर देशाधिपति। महमूद ने सुना था कि गुर्ज्जर का अधिपति बड़ा पराक्रमी है। उनका सैन्य-बल कितना है, यह जानने की इच्छा से सुलतान ने स्थल-पथ से तीन बार गुप्त-चर भेजे; पर एक भी लौट कर न आया। उन लोगों का कुछ संवाद भी न मिला।

इस बार महमूद ने अपने भ्रातृ-पुत्र, गज़नी के भविष्य अधिकारी शाह जमालखाँ और प्रधान सेनापति रुस्तम को भेजा था। इनके साथ चार सैनिक भी आये थे। ये लोग स्थल-पथ से न आकर समुद्र-पथ से आये। रुस्तम खाँ ने अनेक बार सुलतान के साथ उत्तर-भारत में यात्रा की थी। वह अनेक भाषा जानता था, गुर्ज्जर-देश की भी भाषा से अनभिज्ञ न था। इससे यात्रा में इन लोगों को कष्ट न सहना पड़ा और न किसी ने इन पर सन्देह ही किया। दो दिन समुद्र में बिताकर तीसरे दिन ये सोमनाथ-बन्दर पहुँच गये।

नाव खड़ी की गई। सब उतरे। रुस्तम ने माँझियों को एक सुवर्ण-मुद्रा दी वह मुद्रा गुजरात की ही थी, जो पहले से प्राप्त कर ली गई थी। माँझीगण विदा हुए और ये लोग भी पाषाण-खण्डों पर बैठकर विश्राम करने लगे।

समीप में ही सोमनाथ का मन्दिर था। उसके स्वर्ण-मंडित शिखर पर चन्द्र-रश्मि के पड़ने के कारण एक अपूर्व शोभा होती थी। वह शोभा अनिर्वचनीय थी।

क्रमशः सन्ध्या बढ़ने लगी। आरती का समय आया। भगवान् सोमनाथ की आरती होने लगी। दमामा और घंटों की ध्वनि मिलकर एक गम्भीर नाद उत्पन्न करती थी। वह नाद समुद्र के भीषण गर्जन से मिलकर आकाश-मण्डल को कँपा देता था। आरती हो जाने पर वेद-पाठी ब्राह्मण सुमधुर स्वर से सोमनाथ की स्तुति करने लगे। निशा की निस्तब्धता को भंगकर वह स्वर क्रमशः पवन में फैलने लगा। उस मधुर स्वर से चन्द्रालोक-प्लावित तथा पृथ्वीतल पुलकायमान हो उठा।

शाह जमाल स्थिर दृष्टि से उधर ही देख रहा था। वह न जाने क्या सोचता था!

रुस्तम बोला—"हुजूर की क्या मरजी है? चलिये, किसी मुसाफिरखाने में चल कर ठहरें। हमें अपनी चिन्ता नहीं है; पर आपको कष्ट न हो। सुलतान ने हमें यही आज्ञा दी है।"

जमालखाँ ने विरक्त हो कर कहा—"चुप, चुप, रुस्तम! सुलतान का नाम लेने की क्या जरूरत है? जानते नहीं हो, हम लोग कहाँ हैं?" रुस्तम चुप हो गया। भूल उसी की थी।

जमाल खाँ ने कहा—"रुस्तम कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। क्या नगर में इससे अच्छा स्थान मिलेगा? हम लोग

यहीं विश्राम करेंगे। इधर देखो, क्या वे सब तारे हैं ? अहो, क्या इस देश के तारों में इतना वर्ण-वैचित्र्य है ? देखो तो सही, नीले, पीले, लाल और श्वेत तारागणों से, इस नभ-मण्डल की कैसी शोभा छा रही है !"

रुस्तम—"जनाब, आप भूल करते हैं। ये तारे नहीं, सोमनाथ के मन्दिर-शिखर में लगे हुए रत्न हैं।"

जमाल—हाँ ! सोमनाथ का इतना ऐश्वर्य !

रुस्तम—जनाब, सोमनाथ का ऐश्वर्य विश्व-विश्रुत है।

जमाल—जब बाहर इतना है, तब भीतर न-जाने कितना होगा ! पर रुस्तम, सच कहो, ऐसा कभी तुमने कहीं देखा भी था ? ऊपर आकाश में चन्द्र की निर्मल ज्योति, नीचे उसी विमल ज्योति से प्लावित मन्दिर-चूड़ा में स्थित रत्नों की ज्योति ! रुस्तम, क्या कहीं और भी ऐसा होगा ? मैं गुर्ज्जर की यह नैसर्गिक शोभा देखकर मुग्ध हो गया।

रुस्तम—जनाब, और कहीं आप ऐसा न देखियेगा। सुलतान इसीलिये तो इसे हस्तगत करना चाहते हैं और छद्म-वेष धारण कर हम लोगों के यहाँ आने का प्रयोजन भी यही है।

जमाल खाँ ने एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—"रुस्तम क्या कहते हो ? हम लोग इस सुन्दर देश को नष्ट करेंगे ? इस स्वर्ण भूमि को ध्वंस करेंगे ? अग्निदाह कर इस नन्दन कानन

को भस्म करेंगे ? क्या खुदा ने इसी लिए इसको इतनी शोभा सम्पत्ति दी है ? क्या हम लोग इस शान्तिमय देश को शोणित-मय करेंगे ? नहीं, नहीं, रुस्तम ऐसा कभी न होगा। हम ऐसा कदापि न करेंगे ?

रुस्तमखाँ घोर हिन्दू-द्वेषी, सुलतान का उपयुक्त सेनापति था। वह यह बात सुन न सका। पर करता क्या ? धीरे से बोला —"आखिर आपका मनसूबा क्या है।"

जमाल ख़ाँ—यह तो हमने पहिले ही बतला दिया। रुस्तम जिस विजय-वासना ने सुलतान के हृदय को पाषाण बना दिया है, जिसके कारण उन्होंने भारत को आज ध्वंस कर डाला है, खुदा की पवित्र-भूमि में रक्त-प्रवाह बहाया है, जिसके कारण भारत आज स्मशान हो गया है, वह दुर्दमनीय वासना हमारे हृदय में नहीं है। मैं अफ़गानिस्तान के पार्वत्य राज्य से ही संतुष्ट हूँ, मुझे यह ऐश्वर्य न चाहिए। मैं सच कहता हूँ, मुझसे इस सौन्दर्य-शालिनी भूमि के सर्वनाश का कार्य नहीं बनेगा।

रुस्तम ने गम्भीर स्वर से कहा—"जनाब आप कहते क्या हैं ? आते समय सुलतान ने आपको वह तलवार दी थी, इसे साक्षी कर आपने सुलतान की आज्ञा-पालन करने की प्रतिज्ञा की थी। क्या आप अपनी तलवार की गौरव-रक्षा नहीं करेंगे ?

जमाल—रुस्तम, स्वाधीन अफ़गानिस्तान मेरी जन्म-भूमि है

और मैं एक स्वाधीन नराधिप के क्रोड़ में आजन्म परिपालित हुआ हूँ। वह स्वाधीनता मैं नहीं छोड़ सकता। सुलतान को मैंने अपनी देह बेच दी, पर अपने विवेक को नहीं बेचा है। इस देहपर सुलतान का पूरा अधिकार है, पर मेरा विवेक स्वाधीन है। उस पर सुलतान का कोई अधिकार नहीं है। सुलतान चाहें तो अभी मैं उनके लिये प्राण दे दूँ। और वे इस प्राण-विहीन देह को लेकर कुत्तों के सामने डाल दें, पर मैं अपने विवेक के विरुद्ध काम नहीं करूँगा। रुस्तम, तुम यह तलवार ले लो, इसे सुलतान के पैरों के नीचे डाल कर कहना कि जमाल अफ़गानिस्तान को नहीं लौटेगा। वह अब स्वाधीन है। वे उसके अपराध की मार्जना करें। यही उसका अन्तिम अनुरोध है।

यह कह कर शाह जमाल ने रुस्तम की ओर देखा। रुस्तम चुप था। जमाल ख़ाँ ने फिर कहना शुरू किया—"रुस्तम, चुप क्यों हो? क्या तुम्हारे हृदय में पीड़ा नहीं होती? तुम भी वीर-श्रेष्ठ, स्वाधीनता की गोदी में वर्द्धित, तेजस्वी अफ़गान हो; हाय! यह क्या करते हो? रुस्तम! उस दिन का स्मरण क्यों नहीं करते, जब तुमने अपने अपूर्व साहस से सुलतान की प्राण-रक्षा की थी और जब सुलतान ने कृतज्ञ होकर तुम्हें पुरस्कार देना चाहा था? याद है, तब तुमने क्या कहा था? 'जनाब, बन्दा आपकी प्रजा है। प्रजा का कर्तव्य है, राजा की रक्षा करना। पुरस्कार का कोई प्रयोजन नहीं।' रुस्तम, तुम्हारा वह तेज कहाँ है? तुम्हारा वह दर्प, वह साहस और वह वीरत्व

कहाँ है ? आज तुच्छ धन और सम्मान के लोभ से रुस्तम ! वीर रुस्तम ! सुलतान के एक घृणित कार्य्य का समर्थन करता है ! एक दिन जो साहस दरिद्र रुस्तम ने दिखलाया था, वह आज धनिक रुस्तम नहीं दिखला सकता !! हाय, हाय, रुस्तम, यह क्या करते हो ? जरा सोचो तो सही, तुम यह क्या करने चले हो ?" शाहजादा चुप हो गया। रुस्तम सोचने लगा, शाहज़ादे का कहना सच है। सुलतान सत्य ही अन्याय करते हैं। तब क्या रुस्तम सुलतान के विरुद्ध चलेगा ? उनकी आज्ञा भङ्ग करेगा ? सावधान, रुस्तम ! सावधान ! शाह जमाल कुछ भी करें; पर तुम सुलतान के विरुद्ध काम मत करना; नहीं तो तुम्हारी हृदयेश्वरी, प्रियतमा रुखिया बीवी और प्रिय पुत्र, जिन्हें तुम सुलतान के महल में छोड़ आये हो, जल्लादों के हाथ पड़ेंगे। सुलतान उन लोगों को जीता न छोड़ेगा।

रुस्तम बोला—तब आपकी क्या इच्छा है ? हम लोग यहाँ भिक्षा माँग कर जीवन व्यतीत करें, अथवा गुप्तचर के हाथ पड़ कर प्राण खोवें ?

शाह जमाल—क्यों ? भिक्षा क्यों माँगेंगे ? क्या गुर्ज्जर देशवासियों में दया और आतिथ्य-सत्कार का इतना अभाव है ? विश्वास रक्खो, यदि हम लोग गुर्ज्जर-नृपति से अपना सारा हाल कह देंगे, तो वे हम लोगों का अनिष्ट नहीं करेंगे ! सुनते हैं कि हिन्दू शरणागत शत्रुओं का वध नहीं करते। तब किसका भय ?

रुस्तम और सह न सका। वह उन्माद-वश भृकुटि भङ्ग कर बोला—"शाहज़ादे, आप हमें क्षमा कीजिये। आप विश्वास-घातक के समान यह कह रहे हैं। हमसे वह न होगा।

विश्वास-घातक! शाहजमाल का शरीर जल उठा। रुस्तम की यह धृष्टता सह्य न हो सकी। तुरन्त तलवार खींच, व्याघ्र के समान भीषण गर्जना कर बोले—"शैतान, तेरी इतनी स्पर्द्धा! एक अन्याय के समर्थन न करने से हम विश्वास-घातक हो गये!"

चंद्र के आलोक में जमालख़ाँ की तलवार चमक उठी। क्षण-भर में एक भयानक काण्ड हो जाता, परन्तु दैवेच्छा से वह रुक गई। उसी समय पीछे से किसी ने जमालख़ाँ का हाथ पकड़ लिया। स्वतः शाहज़ादे ने पीछे फिर कर देखा। वह एक रमणी थी। शाहज़ादा विस्मय-विमुग्ध हो बोला—"तुम कौन हो? हमारे काम में विघ्न क्यों डाला?"

(२)

उस रमणी ने हँस कर तिरस्कार-व्यञ्जक स्वर से कहा—"आत्म-विवाद कभी भी अच्छा नहीं होता। आप लोग क्यों विवाद करते थे?"

शाहजमाल ने ऐसा कण्ठ-स्वर कभी नहीं सुना था। वीणा-ध्वनि के समान वह स्वर अत्यन्त मधुर था। उत्तर देने के लिए

वह कामिनी की ओर फिरा; पर उस रूप-राशि की ओर वह देखता ही रह गया। उत्तर न दे सका। उसने मन-ही-मन सोचा—"ऐसी अपूर्व रूप-राशि और फिर ऐसी अलौकिक शक्ति! निश्चय ही यह रमणी कोई देवी है।" उस समय रमणी ने फिर कहा—"गुर्ज्जर की यह पवित्र भूमि किसी विदेशी के रक्त से रञ्जित न हो, यही हमारी इच्छा थी और इसीलिये हमने तुम्हारे हाथ से तलवार ले ली।" शाहजादे ने चकित होकर पूछा—"यह तुमसे किसने कहा कि हम लोग विदेशी हैं?"

रमणी—तुम्हारे इस कार्य्य ने। गुर्ज्जर-देश के सम्पूर्ण अधिवासी, हजार कारण होने पर भी, अपने देश-बन्धु के शोणित से इस भूमि को कलंकित न करेंगे और तुम यही करने चले थे।

शाह—(उठकर) रमणी! तुम कौन हो?

रमणी—मैं भगवान् सोमनाथ की दासी हूँ।

शाह—क्या तुमने हम लोगों की सब बातें सुन लीं?

रमणी—हाँ।

शाह—बताओ तो हम कौन हैं?

रमणी—आप गुर्ज्जर के घोर शत्रु हैं।

शाह—(हँसकर) रमणी, तुमने भूल की है, हम लोग काश्मीर के वणिक् हैं।

रमणी—नहीं साहब, मैं भूलती नहीं हूँ। आप सुलतान महमूद के भ्रातृ-पुत्र शाहज़ादे हैं और ये रुस्तम।

शाह जमाल चमक उठा, मुख मलीन हो गया। वह बोला—“रमणी, तुम्हारे साथ और कोई है?

रमणी—नहीं साहब, मैं अकेली हूँ।

शाह जमाल—तुम एक रूपवती रमणी हो। फिर भी अकेली ही फिरती हो!

रमणी—कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। गुर्ज्जर स्वाधीन देश है। यहाँ हिन्दू बसते हैं। पर-स्त्री और पर-कन्या को सब भगिनी-भाव से देखते हैं। साहब, इस देश में रमणी को विपद् की आशङ्का नहीं रहती।

जमाल—समझ गया। पर हम तुम्हारा पूरा परिचय चाहते हैं।

रमणी—इससे अधिक मैं नहीं कह सकती।

शाह जमाल ने मन-ही-मन उस रमणी के साहस की बहुत प्रशंसा की; फिर कठोर स्वर से बोले—“रमणी, परिचय न देने से विपद् में पड़ोगी।”

रमणी—विपद् में कौन डालेगा?

शाह—हम और हमारे साथी।

रमणी—आपके और कितने साथी हैं?

शाह—चार।

रमणी—क्या वे भी आपके समान वीर हैं, क्या स्वाधीनता की लीला-भूमि अफ़ग़ानिस्थान के सब वीर रमणी पर अत्याचार करते हैं ?

रुस्तम यह सह न सका। उसने तलवार खींच ली। रमणी ने शीघ्रता से रुस्तम का हाथ पकड़ कर ऐसा झटका दिया कि, तलवार हाथ से छिटक कर दूर जा गिरी।

रुस्तम विस्मय सहित बोला उठा—"माँ, तुम कौन हो ?"

रमणी ने हँस कर कहा—"मैं भगवान् सोमनाथ की दासी हूँ।"

रुस्तम—क्या गुज्जर की सब रमणियाँ ऐसी ही शक्तिशालिनी हैं ?

रमणी—जिस देश में स्वयं शक्ति के अवतार महाकाल भैरव सोमनाथ विराजते हैं, वहाँ की अधिकांश रमणियाँ ऐसी ही हैं।

इसी समय शाहजादे ने कहा—"रुस्तम, इस रमणी को धन्यवाद दो। इसी के कारण आज यह पवित्र-भूमि हम लोगों के रुधिर-प्रवाह से कलङ्कित होने से बची। चलो, हम लोग अब लौटें। यह यात्रा निष्फल हुई।

रमणी ने पूछा—"कहाँ जाइयेगा ?"

शाह जमाल—अधिकतर सिन्धु देश।

रमणी—अभी आपको नाव कैसे मिलेगी ? फिर एक बात और है कि आप हमारे अतिथि हैं बिना आतिथ्य स्वीकार किये आप जा कैसे सकते हैं ?

शाह—तब हम क्या करें ?

रमणी—आपको हमारे साथ चलना पड़ेगा। आप हमारे अतिथि हैं।

शाह—तुम्हारा विश्वास क्या ?

रमणी—विश्वास ! हमारा वचन।

शाह—यदि हम न जायँ, तो क्या करोगी ?

रमणी—आपको जाना ही पड़ेगा।

यह कह रमणी ने एक शङ्ख निकालकर फूँका। शङ्खनाद के होते ही क्षण भर में वहाँ १०० शस्त्रधारी सैनिक आ पहुँचे। उनमें से एक ने आगे बढ़कर कहा—"माँ, क्या आज्ञा है ?"

रमणी ने हँसकर कहा—"कुछ नहीं। यों ही एक बार तुम्हें देखने की इच्छा हुई। अब तुम लोग जाओ।"

क्षण-भर में वे लोग जहाँ से आये थे वहीं चले गए।

शाह जमाल ने यह देख कर कहा—"अच्छा, हम चलते हैं; पर एक बात की प्रतिज्ञा करो।

रमणी—किस बात की ?

शाह—दग़ा तो नहीं करोगी ?

रमणी—ना, भगवान् सोमनाथ हमें ऐसी मति न दें।

शाह—और एक बात। हमारा परिचय किसी को न देना।

रमणी—स्वीकार है।

शाह—और कल सूर्योदय के पहले हमें विदा दे देना और एक नाव भी ठीक करना।

रमणी—यह स्वीकार है।

शाह जमाल ने रुस्तम की ओर देखकर कहा—"रुस्तम, उन लोगों को भी बुला लो।"

रुस्तम ने एक सीटी बजाई, जिसे सुनते ही वे चारों सैनिक भी आ गए।

रमणी आगे-आगे चलने लगी और वे लोग विस्मय-विमुग्ध होकर पीछे-पीछे जाने लगे।

(३)

कुछ दूर चलने के बाद एक बृहत् अट्टालिका मिली। वहाँ १० शस्त्रधारी सैनिक इधर-उधर घूम रहे थे। रमणी ने शाहज़ादे की ओर देख कर कहा—"महाशय! आप यहाँ निश्शंक आइये, राजपूत अपने अतिथि का अनिष्ट कभी नहीं करते। घोर शत्रु भी यदि अतिथि होकर आवे, तो वह हम लोगों का पूजनीय है।"

इसके बाद उसने एक सैनिक की ओर देखकर कहा—"भैरव, ये लोग हमारे अतिथि हैं। इनको विश्राम-स्थान बतलाओ।" भैरव ने आकर कहा—"चलिये महाशय।"

रमणी एक ओर चली गई और शाह जमाल तथा उसके साथियों ने उस वृहद् अट्टालिका में प्रवेश किया। भैरव इनको एक सजे हुए कमरे में ले गया। वहाँ इनसे कहा—"यह कमरा आपके लिए है और यह दूसरा कमरा आपके भृत्यों के लिए।"

यह कह कर भैरव चला गया। शाह जमाल की आज्ञा पाकर वे चारों सैनिक भी दूसरे कमरे में चले गये। उस कमरे में केवल शाह जमाल और रुस्तम रह गये।

शाह जमाल ने कहा—"रुस्तम!"

रुस्तम—जनाब।

शाह—यह क्या व्यापार है? कुछ समझ में आता है?

रुस्तम—जनाब! कुछ नहीं।

शाह—इनका उद्देश्य क्या है? अतिथि बनाना या इसी मिस से बन्दी करना?

रुस्तम—बन्दी होने में अब क्या कसर है?

शाह—और यह रमणी कौन है?

और कुछ बात नहीं हुई। इसी समय भैरव चार भृत्यों के साथ आ पहुँचा।

भैरव बोला—"हमारी माताजी का अनुरोध है कि अब आप लोग भोजन करें। यहाँ जो कुछ मिल सकता है, वही आपके लिए लाया गया है। फल हैं, फल कन्द-मूल और दुग्ध को छोड़ और कुछ नहीं है। कल प्रातःकाल माता जी से साक्षात् होगा।" भैरव चला गया और वे लोग भोजन कर सोने की चेष्टा करने लगे। शाहज़ादे को छोड़, घड़ी भर में सब घोर निद्रा में अचेत हो गये।

शाहज़ादे को नींद नहीं आई। वह जागता ही रहा। आज तक शाहज़ादे के हृदय में किसी रमणी का चित्र अंकित नहीं हुआ था, पर उस गुज्जर-रमणी के अपूर्व सौन्दर्य, अदम्य साहस और अतिथ्य-सत्कार ने उसके हृदय पर एक बड़ा आघात कर दिया था। उस आघात के कारण उसका हृदय जल रहा था। शाहज़ादे को ज़रा भी शान्ति नहीं मिलती थी।

रात व्यतीत हो गयी। आकाश में प्रातःकाल की लालिमा फैलने लगी। रुस्तम भी सोकर उठा और चारों सैनिक भी। भैरव फिर आया। शाहज़ादे को प्रणाम कर बोला—"रानी जी जानना चाहती हैं कि आप लोगों को कल कुछ कष्ट तो नहीं हुआ?"

शाह—रानीजी कौन? जिन्होंने हमें आश्रय दिया है?

भैरव—जी हाँ, जिनके आप अतिथि हैं।

शाह—वे ही गुर्ज्जर की राजकन्या कमलावती हैं, जो कल हमारे साथ आई थीं ?

भैरव—जी हाँ।

शाह—रानीजी को हमारी ओर से धन्यवाद देकर कहना, हम लोग उनके बड़े कृतज्ञ हैं। अब वे हम को विदा करें।

भैरव—आप लोग प्रातःकाल के कार्यों से यदि निवृत्त हो चुके हों, तो अभी प्रस्थान कीजिये। नाव तैयार है।

शाह—गुर्ज्जर के अतिथि आपकी रानी के निकट और एक बात के प्रार्थी हैं।

भैरव—कहिये।

शाह—यही कि वे स्वयं आकर हमें विदा देवें।

भैरव—असम्भव, ऐसा कभी नहीं हो सकता।

शाह—क्यों ? कल तो वे हमारे साथ आई थीं !

भैरव—पर वह आना कर्तव्य के अनुरोध से था, आज कदापि नहीं आ सकतीं।

शाह—हम मुसलमान हैं। अपने आमंत्रित अतिथि को पूरे सम्मान-सहित विदा करते हैं। देखते हैं कि गुर्ज्जर की रानी शिष्टाचार की आदर्श नहीं हैं। वे अपने श्रेष्ठ अतिथि के अपमान करने में संकोच नहीं करतीं।

भैरव का मुख लाल हो गया। उसने तलवार पर हाथ

रक्खा, इसी समय पीछे से किसी ने कहा—"सावधान! भैरव! सावधान! अतिथि का अपमान मत करना।"

भैरव ने चौंक कर पीछे देखा कि, स्वयं रानी कमलावती खड़ी हैं।

शाह जमाल ने देखा कि, इस बार कमलावती का मुख खुला नहीं है, वह अवगुण्ठन से आवृत्त है।

कमलावती ने शाह जमाल की ओर देख कर कहा—"जनाब! आप गुर्ज्जर पर कलंक आरोपण करने के लिए उद्यत हो गए थे; इसी लिए मुझे आना पड़ा। यह ध्यान रखिए कि गुर्ज्जर की रानी अपने अतिथि के साथ अशिष्ट व्यवहार नहीं करती।"

कमलावती यह कहकर चुप हो गई। शाह जमाल ने सिर नीचा कर लिया। कमलावती ने फिर गम्भीर स्वर से कहा—'जनाब, मैं अब अधिक समय तक नहीं ठहर सकती; क्योंकि पूजा का समय आ रहा है। यदि हमसे कुछ भूल हुई हो, तो उसे आप क्षमा करें; भूल सभी से हो जाती है। हाँ यह भी कहे देती हूँ कि आप फिर कभी छद्म-वेष से गुर्ज्जर-प्रदेश में न आइएगा, नहीं तो आप विपद् में पड़ेंगे।"

कमलावती शीघ्रता से चली गई। जैसे विद्युत क्षणभर में आकाश-मण्डल में प्रकट होकर फिर लुप्त हो जाती है, वैसे ही

वह शीघ्रता से आई और शीघ्रता से ही चली गई। शाह जमाल देखता ही रह गया।

सेनापति रुस्तम ने कहा—"शाहजादे! अब आप वृथा विलम्ब क्यों करते हैं?"

शाहजादे ने एक दीर्घ निःश्वास परित्याग कर कहा—"रुस्तम, चलो, अब यहाँ ठहरने का काम नहीं।"

सब लोग आगे बढ़े और भैरव भी उनके पीछे चला।

(४)

"मा, क्या यह काम अच्छा हुआ?"

"इसमें बुरा क्या हुआ भैरव?"

"मुसलमान हमारे शत्रु हैं। और फिर जो यहाँ आए थे, वे लोग हमारे घोर शत्रु हैं।"

"कुछ भी हो, पर थे तो हमारे अतिथि!"

"जान पड़ता है, गुर्ज्जर पर शीघ्र ही विपद् आवेगी।"

"यह कैसे जाना?"

"उन लोगों की बात-चीत से मालूम हुआ।"

"कुछ चिन्ता की बात नहीं है। भैरव, तुम भय मत करो, गुर्ज्जरवासी निर्बल नहीं हैं। कुमारसिंह की शक्ति क्षीण नहीं हुई। गुर्ज्जर का अभी कुछ भी अनिष्ट न होगा।"

पीछे से किसी ने कहा—"सत्य है कमला ! गुर्ज्जर-वासी निर्बल नहीं है।"

कमलावती ने मुँह फेरकर देखा तो कुमार पीछे खड़े हँस रहे हैं। भैरव कुमार को देखकर अन्यत्र चला गया। कमला ने चिन्तित स्वर से कहा—"कुमार ! हम लोगों पर विपद् आने वाली है।"

कुमार बोले—"विपद् ! कमला, जब तक सुलतान महमूद जीवित हैं तब तक विपद् का अभाव न रहेगा, पर यह ध्यान रक्खो, हम भी विपद् को ही खोजते रहते हैं।"

कमला ने कठोर दृष्टि-पात कर पूछा—"कैसे ?"

कुमार—क्या यह नहीं जानती ? स्मरण है, सोमनाथ के मन्दिर में आपने क्या प्रतिज्ञा की थी और क्या स्वीकार किया था ? यदि विपद् न आवेगी, तो कुमारसिंह का बाहु-बल कैसे प्रकट होगा ?

कमला गम्भीर होकर बोली—"कुमार, यह समय सुख-कल्पना करने का नहीं है। गुर्ज्जर का सारा भार तुम पर है। पिता वृद्ध हैं। वे तुम पर विश्वास करते हैं।"

कुमार—यह सब जानता हूँ। जीवन रहते मैं कर्त्तव्य से पराङ्मुख न हूँगा। तुम इसकी चिन्ता मत करो। पर मुझे एक बात की चिन्ता है।

कमला—कौन बात ? मुझसे संकोच न करना।

कुमार—कमला, युद्ध में सब अनिश्चित् रहता है। कौन जानता है कि क्या होगा ? यदि कहीं मैं युद्ध में मारा जाऊँ ?

कमला—कुमार, तो मैं स्वर्ग में जाकर तुम्हारे चरणों को चूमूँगी।

कुमार—कमला, मैं यही सुनना चाहता था। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि तुम्हारे लिए ही 'महमूद' गुर्ज्जर पर आक्रमण करेगा।

कमला—यह आपने कैसे जाना ?

कुमार—सुलतान का भ्रातृ-पुत्र शाह जमाल तुम्हें देखकर उन्मत्त-सा हो गया है। वही सेनापति होकर आवेगा; यह भैरव ने हम से कहा है। वह उन लोगों के साथ बड़ी दूर तक गया था। उसने यह बात उन लोगों के मुख से सुनी है।

यह सुनकर कमलावती के हृदय में भय होने लगा। एक अनिष्ट की आशंका होने लगी। क्या उसके लिये उसकी जननी जन्म-भूमि का सर्वनाश होगा ? क्या उसी के लिए शाह जमाल गुर्ज्जर पर आक्रमण करेगा ?

कुछ क्षण बाद कमलावती ने कहा—"कुमार, तुम इसका भय मत करो। मैं राजपूत की कन्या हूँ। मैं अपना धर्म भली-भाँति जानती हूँ। समय आने पर हम लोगों के लिए चिताग्नि चन्दन-प्रलेप के समान शीतल हो जाती है।"

कुमार के नेत्रों में जल भर आया। वे वहाँ से चले गये। कमलावती ने आकाश की ओर देखकर करुण-स्वर से कहा—"भगवान सोमनाथ! सहस्रों कमलावती चाहे काल के भीषण स्रोत में बह जायँ, पर देखना प्रभो, कुमार गुर्ज्जर की रक्षा भली-भाँति करें।"

(५)

सिन्धु देश में समुद्र-तीर से दस कोस पर सुलतान महमूद ने एक नगर बसाया था। वह अब भी महमूदाबाद के नाम से प्रसिद्ध है। भारत में राज्य-स्थापित करना, यह महमूद का आन्तरिक उद्देश्य न था और इसके लिये उसने प्रयत्न भी नहीं किया। उसकी इच्छा थी—असंख्य रत्न-संग्रह करना। इसी इच्छा को पूरी करने के लिए महमूद ने भारत पर अनेक बार आक्रमण किया और दैवेच्छा से वह सदा सफल-मनोरथ ही होता रहा। उसकी राजधानी, गजनी, भारत-ऐश्वर्य से अलकापुरी के तुल्य हो गई, परन्तु महमूद सन्तुष्ट न हुआ।

सोमनाथ के ऐश्वर्य की कथा सुनकर उसने गुर्ज्जर पर भी धावा करने का निश्चय किया। परन्तु उसे सुयोग न मिलता था। उसने अनेक बार चेष्टा की, परन्तु कुछ कर न सका। इस बार उसने शाहजादा शाह जमाल और सेनापति रुस्तम को हिन्दू वणिक् के वेष में भेजा। इन लोगों ने गुर्ज्जर देश में प्रवेश

भी किया। इसके बाद जो कुछ हुआ वह पाठकगण जानते ही हैं।

राज-कन्या कमलावती के आदेश से भैरव उन लोगों को एक निरापद् स्थान तक पहुँचा कर गुर्ज्जर को लौट आया। मार्ग में शाह जमाल और रुस्तम पश्तो भाषा में वार्तालाप करते थे। शाह जमाल ने कई बार कमलावती का नामोल्लेख किया। भैरव पश्तो नहीं जानता था, इससे कुछ समझ न सका, पर गुर्ज्जर की माता, प्रत्यक्ष देवी कमलावती का पवित्र नाम उन लोगों के मुख से सुनकर भैरव का सारा शरीर जलने लगा। एक बार उसके मन में आया कि नाव को समुद्र में डुबा दें, जिससे गुर्ज्जर के दो प्रबल शत्रुओं का नाश हो जाय; पर उसी समय कमलावती का अन्तिम बचन उसके ध्यान में आ गया—"देखना भैरव, इन लोगों का कुछ भी अनिष्ट न हो। शत्रु होने पर भी ये लोग हमारे अतिथि हैं।" भैरव ने तुरन्त ही अपने हृदय की उत्तेजना को दबा लिया, पर इतना उसने समझ लिया कि गुर्ज्जर पर यवन लोग शीघ्र ही आक्रमण करेंगे; परन्तु इस बार सोमनाथ के विश्व-विश्रुत ऐश्वर्य के लिये नहीं, कमलावती के लिए! शाहजादा के हृदय में एक भीषण अग्नि धधक रही थी, उसी की शान्ति के लिये वह किसी-न-किसी दिन गुर्ज्जर पर विपद् लावेगा।

(६)

महमूदाबाद आकर शाह जमाल ने सुना कि सुलतान महमूद

आखेट के लिये निकले हैं। शाहज़ादा वहीं सुलतान की राह देखने लगा। रुस्तम भी उसके साथ ठहरा रहा।

यहाँ आकर रुस्तम ने देखा कि शाहज़ादा अब हमको प्रसन्न करने की चेष्टा में सदा लगा रहता है। चालाक रुस्तम समझ गया कि शाह जमाल क्यों ख़ुशामद करता है। बात यह थी कि रुस्तम सुलतान का प्रधान सेनापति था। फिर उस पर सुलतान का पूर्ण विश्वास था। शाहज़ादे ने सोचा कि रुस्तम से विवाद करना अच्छा न हुआ। क्षण-भर में उत्तेजना के वश उसने जो कुछ कह डाला था उसके लिए वह पश्चात्ताप करने लगा। फिर उन्हें भय था कि रुस्तम कहीं यह सब बात सुलतान से जाकर न कह दे। यही सब सोच-विचार कर शाह जमाल रुस्तम की ख़ुशामद में लगा रहता था। रुस्तम शाह जमाल पर आन्तरिक स्नेह रखता था। वह कभी नहीं चाहता था कि शाह का कुछ अनिष्ट हो।

सन्ध्या के समय एक निर्जन कमरे में बैठे शाह जमाल और रुस्तम वार्तालाप कर रहे हैं। शाह जमाल ने कहा—"रुस्तम साहब, आपने हमारी बे-अदबी तो माफ कर दी?"

रुस्तम—जनाब का लड़कपन अभी नहीं गया है। इसी से उस दिन ऐसी बात हो गई; पर हमने मनमें उसे कभी नहीं रक्खा। हुज़ूर, यह ध्यान रक्खें कि ऐसी छोटी-छोटी बातों पर रुस्तम कभी ध्यान नहीं देता।"

शाह—हमसे एक बात की प्रतिज्ञा करो।

रुस्तम—कहिये।

शाह—उस दिन की बात तो तुम सुलतान से कभी न कहोगे ?

रुस्तम—आज तक मैंने मिथ्या-भाषण नहीं किया है। आपके लिए मैं वह भी करूँगा। आप विश्वास करें, सुलतान को यह बात कभी न मालूम होगी।

शाह—रुस्तम, हमने भी दृढ़ नियम किया है कि हम सुलतान की आज्ञा अब कभी न भङ्ग करेंगे।

रुस्तम—तो क्या आप गुर्ज्जर पर उनके कहने से, आक्रमण करेंगे ?

शाह—जरूर।

रुस्तम—यह क्या ? शाहज़ादे, यह सब कमलावती के लिए तो नहीं है ?

शाह—वही बात है, रुस्तम !

रुस्तम—पर आप यह जान लें कि गुर्ज्जर को ध्वंस किये बिना आप कमलावती को नहीं पा सकते। जब तक गुर्ज्जर में एक भी राजपूत जीता रहेगा, तब तक आप निरापद् नहीं हो सकते।

शाह जमाल—हाँ, रुस्तम, अब की बार हम गुर्ज्जर को

बिल्कुल ध्वंस कर डालेंगे, उसे एक बार ही श्मशान बना देंगे। जिस प्रदेश की प्राकृतिक शोभा ने कभी हमें मुग्ध कर लिया था, उसी प्रदेश को—तुम देख लेना—हम प्रेत-भूमि बना कर छोड़ेंगे।

रुस्तम—कमलावती क्या इतनी सुन्दरी है ?

शाह जमाल—रुस्तम ! तुम उस रूप का मूल्य नहीं जानते।

रुस्तम कुछ कहना चाहता था कि सुलतान महमूद स्वयम् आ पहुंचा। उन्हें देख कर शाह के चेहरे का रङ्ग उड़ गया। रुस्तम का भी हृदय काँप उठा। दोनों आसन-त्याग कर सम्भ्रम उठ बैठे।

सुलतान ने गम्भीर स्वर में जमाल की ओर देख कर कहा—"जमाल, गुर्ज्जर का क्या संवाद है ?"

शाह जमाल—जहाँपनाह, संवाद शुभ है।

सुलतान—गुर्ज्जर-पति का सेना-बल कितना है ?

शाह जमाल—हम लोगों से बहुत कम !

सुलतान—गुर्ज्जर-विजय करने के लिए तुम्हें कितनी सेना चाहिए ?

शाह जमाल—दस हजार।

सुलतान—दस हज़ार ! तुमको दस और रुस्तम को पाँच हज़ार देने से हमारा बाहु-बल शिथिल हो जायगा।

शाह जमाल—गुर्ज्जर की सेना ख़ूब सुरक्षित है।

सुलतान—जानता हूँ, पर मुझे आश्चर्य है कि ग़ज़नी का भविष्य-अधिकारी अफ़ग़ान-सैनिक का बल नहीं जानता !

शाह जमाल के हृदय में यह बात तीर-सी लगी। उसने तेज़ी से कहा—"जहाँपनाह, हम केवल पाँच हज़ार सेना लेकर युद्ध में जाने के लिए प्रस्तुत हैं। आपके आशीर्वाद से मैं इतनी ही सेना से गुर्ज्जर-विजय करूँगा। यदि नहीं, तो युद्ध में ही प्राण-त्याग करूँगा; लौटूँगा नहीं।" सुलतान शाह जमाल को पुत्र के समान चाहता था। यह बात सुन कर उसके नेत्रों में जल भर आया। उसने कहा—"जमाल, हम तुम्हें दस हज़ार सेना देंगे। पर तीन हज़ार रुस्तम के आधीन रह कर तुम्हारी पार्श्व-रक्षा करेगी। कल ही युद्ध-यात्रा करो। हाँ, एक बात और कहनी है, गुर्ज्जर-पति को बन्दी कर हमारे पास भेजना। यदि जीता हाथ न आवे, तो सिर काट कर भेजना।"

शाह—जहाँपनाह, मैं वैसा ही करूँगा।

सुलतान—हाँ, और एक बात।

शाह—आज्ञा।

सुलतान—हम सुनते हैं, गुर्ज्जर-राजकन्या कमलावती

अत्यन्त सुन्दरी है। हम उसे बेगम बनाना चाहते हैं। इसलिए तुम उसे सम्मान-सहित हमारे पास भेजना।

शाह जमाल के मस्तक पर सहसा वज्रपात हो गया। सारा संसार अन्धकार-मय बोध होने लगा, पर उपाय क्या था? कहना पड़ा—"बन्दा आपकी आज्ञा का पालन करेगा। आप निश्चिन्त रहें।"

सुलतान और कुछ न बोला, वहाँ से शीघ्र चला गया।

शाह जमाल के हृदयाकाश में आशा का जो उज्ज्वल आलोक प्रकट हुआ था वह अन्धकार-मय निराशा में परिणत हो गया। वह सुख का स्वप्न चला गया।

गुर्ज्जर-विजय करने का पहले जैसा उत्साह था, वैसा अब न रहा। शाह विषण्ण मुख से बोला—"रुस्तम युद्ध के लिए प्रस्तुत हो। ख़ुदा को मञ्जूर है वही होगा।"

(७)

भैरव हाँफता-हाँफता कमलावती के कमरे के पास आकर विकृत-स्वर से बोला—"मा, मा!"

कमलावती ने बाहर आकर कहा—"कौन है? भैरव! क्या बात है?"

भैरव ने कहा—"मा, सर्वनाश उपस्थित है!"

कमलावती ने डर कर पूछा—"क्यों, क्या हुआ?"

भैरव—"मुसलमानों की सेना गुर्जर के समीप आ गई है।"

कमलावती—कितनी होगी।

भैरव—प्राय: बीस हजार।

कमला—बी-स-ह-जा-र— ! ! !

भैरव—हाँ, मा, इससे अधिक होगी—कम नहीं।

कमला—गुर्जर की रक्षा कैसे होगी ? भैरव, हमारी सेना दस हजार से अधिक नहीं है।

भैरव—"हाँ, मा, और—और तुम्हारी कैसे रक्षा होगी, मा !" कमला के मुख की लालिमा चली गई, वह गम्भीर होकर बोली—"भैरव, हमारी कौन चिन्ता ? क्या तू भूल गया कि मैं राजपूत-कन्या हूँ। हम लोगों को मृत्यु से भय नहीं है। अपनी जन्म-भूमि की चिन्ता कर। पिता कहाँ हैं ?"

भैरव—"नगर के बाहर व्यूह-रचना कर रहे हैं। उनका कहना है कि वे सोमनाथ के चरण-तल में रह कर युद्ध करेंगे। वे ही हमारी रक्षा करेंगे।" कमला कातर स्वर से बोल उठी—"भगवान् सोमनाथ, क्या होगा ? क्या करोगे ? प्रभो !"

सहसा कुमारसिंह वहाँ युद्ध-वेष में आ पहुँचा। कमलावती कुमार का हाथ पकड़ कर बोली—"कुमार अब क्या होगा ?" कुमार उत्साह-पूर्ण स्वर से बोला—"किसी का भय नहीं है। कमला, स्वयं स्वयंभू हमारे पृष्ठ-पोषक हैं। जहाँ सोमनाथ महा-काल के रूप में विराजमान हैं और जहाँ साक्षात् शक्तिमयी

देवी तुम हो, वहाँ कमला, हम लोगों को भय किस बात का है? तुम हमें प्रसन्न मुख से विदा दो।" कमला सजल नेत्रों से बोली—"कुमार, आज न जाने क्यों मेरा हृदय काँपता है? न जाने क्यों अनिष्ट की आशंका होती है? हाय! इस सर्वनाश और अनर्थ की जड़ मैं ही हूँ। हाय! मैंने क्यों शैतान जमाल को आश्रय दिया?"

कुमार—कमला, यह विषाद करने का समय नहीं है। तुम राजपूत-कन्या हो। धैर्य धरो। मैं जाता हूँ, पर एक बात और कहनी है। युद्ध में जय-पराजय दोनों मिलती हैं। कौन जानता है, कहीं हमारी पराजय हो और उन लोगों की जय। यदि कहीं ऐसा हो, तब तुम्हें आत्म-रक्षा के लिए समय न मिलेगा। इसलिए यह मैं तुम्हें दिये जाता हूँ। विपद् पड़ने पर अपनी धर्म-रक्षा के लिये तुम इस बिष का सदुपयोग करना। मेरी मृत्यु हो जाने और तुम्हारे पिता के स्वर्ग-गत होने पर, कमला! तुम यह जान रक्खो, देवता भी तुम्हारी रक्षा न कर सकेंगे। उस समय यही विष तुम्हारी और तुम्हारे धर्म की रक्षा करेगा। जब तुम सुन लेना कि कुमार अब संसार में नहीं रहा, तब तुम विष-पान कर अपनी पवित्रता की रक्षा करना।

यह कह कर कुमार ने कमलावती के हाथ में एक क़ाग़ज़ की पुड़िया दे दी और फिर सजल नेत्रों से युद्ध-भूमि की ओ

प्रस्थान किया। भैरव दूसरे कमरे में था। कुमार को जाते देख कर वह भी उनके पीछे हो गया।

(८)

सन्ध्या हुई। गुर्ज्जर-सेना पठानों से पराजित हुई। सूर्यदेव गुर्ज्जर के पराजय का कलंक न सह, क्रोध में लोहित वर्ण धारण कर आकाश-मण्डल से अदृश्य हो गये।

उस दिन भगवान सोमनाथ के मन्दिर में आरती नहीं हुई। उस दिन देव-मन्दिर के घण्ट-निनाद और ब्राह्मणों के स्तोत्र-पाठ से आकाश नहीं गूँजा, दिगन्त मुखरित नहीं हुआ। उस दिन समुद्र-तरङ्ग ने घोर गर्जन नहीं किया। उस दिन गुर्ज्जर की सौन्दर्य-शालिनी भूमि विभीषिका-मय श्मशान के समान हो गई थी।

भगवान् सोमनाथ श्मशान ही में रहते हैं, वहीं उनका निवास-स्थान है। पर इस श्मशान में चिता-भस्म नहीं है। उसके स्थान में उनके एकान्त भक्त गुर्ज्जर वासियों का हृदय शोणित बह रहा है।

क्रमशः रजनी गम्भीर होने लगी। अन्धकार बढ़ने लगा। कमलावती अपने पिता की मृत-देह के लिए चिता रचकर भैरव के साथ फिर युद्ध-भूमि में आई। उस महा-श्मशान में वह प्रेतनी के समान घूम रही है। पीछे-पीछे मशाल हाथ में लिए भैरव था। भैरव मृत-देहों के मुख के पास मशाल ले जाता,

था, फिर निराशा-पूर्ण स्वर से कहता था, "नहीं, ये कुमार नहीं हैं।" वायु भी हताश होकर कहता था, "नहीं, ये कुमार नहीं हैं।" उस श्मशान-क्षेत्र में स्थित वृक्षों के पत्ते भी कहने लगते—"नहीं, ये कुमारसिंह नहीं हैं।" ऐसा प्रतीत होता था मानो चन्द्र-हीन आकाश-मण्डल के तारे पूछ रहे हों "कुमारसिंह कहाँ है? उन्हें कहाँ खोजती हो? वे तो हमारे राज्य में हैं।" कमलावती निराश होकर फिर दूसरी मृत देह की ओर जाती थी।।

इसी समय उस अन्धकार-मय श्मशान-भूमि में दो मनुष्यों की आकृति दीख पड़ी। वे मूर्ति-द्वय, भैरव और कमलावती ने उन दोनों को पहचान लिया और भैरव ने भी। उनमें से एक शाह जमाल था और दूसरा रुस्तम।

कमलावती ने तिरस्कार-पूर्ण स्वर से कहा—"शैतान, नराधम, तूने क्यों हमारा सर्वनाश किया? क्या हमारे आतिथ्य-सत्कार का यही पुरस्कार है?" शाह जमाल ने उस तिरस्कार का उत्तर न दिया। वह इस समय कमलावती की ओर स्थिर दृष्टि से देख रहा था। जिसके लिए आज उसने गुज्जर को प्रेत-भूमि कर दी है, उसे सामने खड़ी देखकर शाह जमाल उन्मत्त हो उठा। फिर विकृत-स्वर से बोला—"कमला! तुम यहाँ क्यों घूम रही हो? यह हम अनुमान से कह सकते हैं कि कदाचित् तुम कुमारसिंह की मृत-देह लेना चाहती हो। पर कुमार मरे नहीं हैं, आहत हैं और हमारे शिविर में बन्दी हैं। कमला, हम

कृतघ्न नहीं हैं। यदि तुम चाहो, तो हम अभी उन्हें स्वाधीन कर दें, पर इसके लिए मैं तुम्हें लेना चाहता हूँ।" इसके बाद शाह जमाल उत्तेजित स्वर से कहने लगा—"कमला; सुलतान तुम्हें बेगम बनाना चाहते हैं और मैं तुम्हें अपनी हृदयेश्वरी, अपनी प्राणेश्वरी करना चाहता हूँ। मैं ग़ज़नी का भावी सुलतान हूँ, पर कमला, तुम्हारे लिए मैं वह राज्य छोड़े देता हूँ। मैं तुम्हें चाहता हूँ। मैंने निश्चय कर लिया है कि अब मैं अफ़ग़ानिस्तान न लौटूँगा। इसी देश में एक कुटी बनाकर मैं तुम्हारे साथ सुख से रहूँगा। मुझे अब और कुछ नहीं चाहिए। कमला, प्राणेश्वरी कमला! एक बार कहो, तुम मेरी हो।" इतना कहकर शाह जमाल कमलावती को आलिङ्गन करने के लिए दौड़ा। एकाएक पीछे से बन्दूक की आवाज़ आई। शाह जमाल आहत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। शीघ्र ही वह आघातकारी सब के सम्मुख आया। उसे देख रुस्तम के आश्चर्य की सीमा न रही, क्योंकि वह स्वयं सुलतान महमूद था।

भू-पतित शाहज़ादे की ओर देखकर सुलतान बोला—"शैतान विश्वास-घातक! नफ़र, क्या इसी लिए मैंने तुझ पर इतना विश्वास किया था? मैंने तुझे क्या नहीं दिया? और फिर तूने मेरे ही साथ दग़ा की। महमूदाबाद में मैंने छिप कर तेरी बातें सुन ली थीं। एक सैनिक के वेष में मैं तेरे पीछे-पीछे यहाँ तक आया, और यहाँ आज मैंने तुझे इस दग़ाबाजी के लिए पूरा पुरस्कार दे दिया।"

यह कहकर सुलतान पीछे लौटा; देखा, वहाँ कमलावती और भैरव कोई नहीं हैं, रुस्तम खड़ा है। सुलतान ने पूछा—"रुस्तम, ये दोनों कहाँ चले गए?"

रुस्तम ने कहा—"जहाँपनाह, मैं कह नहीं सकता, कहाँ गए! मैंने खयाल नहीं किया।"

सुलतान—"रुस्तम, तुम इस लाश को उठाकर मेरे पीछे-पीछे आओ।" रुस्तम शाह जमाल की लाश उठाकर सुलतान के पीछे-पीछे चला। शिविर में जाने से मालूम हुआ कि कुमार सिंह भी न-जाने कैसे छूटकर निकल गए! सुलतान ने कहा—"रुस्तम, इस बार हम दुश्मनों को शिकस्त न कर सके। चलो, फिर कभी देखा जायगा।"

सुलतान महमूद के लौट जाने पर कुमारसिंह ने कमलावती का पाणिग्रहण किया। कमलावती के पिता की भी यही अन्तिम इच्छा थी। कुमारसिंह उनके बाद गुज्जर के अधीश्वर हुए।

महूला

[श्री राय कृष्णदास]

[आप बनारस के रहने वाले हैं। गद्य-काव्य लेखकों में आपकी उच्च गणना है। आपकी प्रतिभाशाली रचनाएँ पत्रिकाओं में अक्सर निकलती रहीं हैं। आपकी कहानियों का हिन्दी में बहुत मान है। "महूला" आपकी एक उत्कृष्ट रचना है।]

उत्तरी भारत के हूण अधिपति तोमारल के राज्य में मन्दसोर एक प्रधान प्रान्त था। हेमनाभ वहाँ का क्षत्रप था। वह साल में दो बार अधिपति की सेवा में कर देने उपस्थित होता था। हूण साम्राज्य की राजधानी उस समय मथुरा थी।

हेमनाभ वहाँ एक महीना बिताकर घर लौटता। मन्दसोर में मथुरा जैसी चहल-पहल थोड़े ही थी। फिर वहाँ के बाजार में देश-देशान्तरों की चीजें आतीं,—चीन के कौशेय सिंहल के छपे कपड़े और मोती, पारस के घोड़े, यवन-दासियाँ—जो चाहे एक ही स्थान पर लेलो! मथुरा उन दिनों की कलकत्ता, बम्बई समझिये। क्षत्रप अपने लिए, मित्रों के लिए और व्यवसाय के लिए हजारों का माल लेते। उस समय के हजारों का माल आज कल के लाखों के बराबर है।

राजधानी के सभी उच्चपदस्थ अधिकारियों से उसका खूब मेल-जोल था। कुछ पद के कारण नहीं, अपने स्वभाव के कारण भी। वह बड़ा ही मिलनसार था। अकसर अपने इष्ट-मित्रों के सङ्ग वह आपानकों, गोष्ठियों और यात्राओं के सुख लूटता। किन्तु कदम्ब और तमाल के झुरमुटों में जब शराब का बाजार गर्म हो उठता तब न जाने क्यों उसका हृदय उदास हो उठता। नशे से उत्तेजित मस्तिष्क उसके सामने उन कुंजों में कृष्णलीला के दृश्य उपस्थित करता और साथ ही उसकी नशीली मनोवृत्ति उसे थपेड़े लगाने लगती कि आज उन्हीं कुंजों में ये हूण आनन्द कर रहे हैं और तुम,—चन्द्रवंश की सन्तान—भी उन्हीं के पीछे लगे-लगे मुर्दे की तरह यह दशा देख रहे हो।

फिर मन्दिरों की चहल-पहल; हीनयान, महायान आदि अनेक सम्प्रदाय के बौद्ध और हिन्दू दोनों ही धर्मों के मन्दिरों

में उसे भिन्न-भिन्न दृश्य दिखलाई पड़ते। जैन मन्दिरों का वायुमण्डल इन दोनों से भिन्न था। देवकुलों की चहल-पहल कुछ निराली ही थी। अजातशत्रु से लेकर उस समय तक के सम्राटों की प्रतिकृतियों को देख-देखकर उसके हृदय में प्रति क्षण विलक्षण भाव जाग्रत होते।

मठों और विहारों में जाना भी वह न भूलता और फिर एकान्त में बैठ कर वह सद्धर्म से लेकर आज के महायान और उसके अवान्तर यानों तक क्रम-विकास पर विचार करता। भगवान् तथा धर्म का यह नया उग्र रूप उसे न जँचता। स्थाविरों की करतूतों से उसे बौद्ध-धर्म के ह्रास का निश्चय था। फिर वह यह भी देखता कि किस प्रकार एक ओर इन उत्कट सिद्धान्तों को हिन्दू लोग अपना रहे हैं, दूसरी ओर सद्धर्म की सभी अच्छी बातें कट-छँट कर भगवत धर्म में विलीन हो रही हैं।

प्रबन्ध के झञ्झटों से साल में दो बार अलग होकर, इन सब बातों के निरीक्षण और समझने में उसे बड़ा आनन्द मिलता। उसकी कुण्ठित वृत्तियां पुनः जीवित हो उठतीं और अपनी नगरी में लौट कर वह नए उत्साह से कार्यभार वहन करता।

इन सबसे बढ़ कर उस राजधानी में एक और आकर्षण

था—राजकुमारी गहूला विशेष आग्रह से हेमनाभ को राजधानी में रुकने को कहती।

एकोनविंशति वर्षीया राजकन्या अकसर उसे अपने उपवन में बुलाती और माधवी निकुञ्ज में उसे अपने सामने बिठा कर मन्दसोर के बारे में अनेक बातें पूछती—

"सुनती हूँ वह सौन्दर्य की खान है। क्षत्रप, तुम एक बार तो मुझे वहाँ की सुन्दरियों से मिलाओ, मैं उनसे मैत्री करूँगी। राजकन्या जैसा बर्ताव न करूँगी। बोलो, मुझे कब वहाँ की यात्रा कराओगे?"

"देवि, जब आपकी आज्ञा हो"। प्रतिबार हेमनाभ का यही उत्तर होता। और, राजकुमारी कभी कोई समय नियत न करती। साथ ही उससे उक्त बात कहना भी न भूलती। अकसर इसके साथ उलहना भी सम्मिलित होता—

"उस बार तो ख़ूब ले गये। देखना है, इस बार ले चलते हो कि नहीं। क्या तुम्हें वहाँ की सुन्दरता पर इतना ममत्व है कि संसार को उससे वञ्चित रखना चाहते हो? मुझे तो इसी का अचरज है कि जब उस पर तुम्हें इतना मोह है तब भी तुम क्वांरे क्यों बने हो?"

"भगवति, मोह से क्या? प्रेम जो चाहिये।" इस उत्तर के सङ्ग उसके मुँह से एक ठण्ढी साँस भी निकल पड़ती।

घड़ियों बातें होतीं। मोतिया और फरास के पेड़ मर्मर किया करते और राजकुमारी अपने एकटक धवल नयनों से हेमनाभ को खींचतीं हुई उसकी बातें सुना करती। अपने हाथों स्फटिक पात्र से द्राक्षासव ढाल कर रत्न चषक से उसे पिलाती और उसकी आँखों में राग दौड़ते देखती।

कभी उसे अपने मयूरों का नृत्य भी दिखलाती और पूछती कि कहीं ऐसे सुन्दर मयूर तुमने देखे हैं?

"श्रीमती, चाहे आप मेरा विश्वास करें वा नहीं, ब्रज जैसी सुन्दरता मैंने कहीं नहीं देखी। एक मयूरों पर ही क्या?"

"किन्तु एक बात तुम भूलते हो। एक मुझे छोड़ कर!!" राजकुमारी की बड़ी-बड़ी आँखें हेमनाभ का मन टटोलने लगतीं और बिना उसके मुँह से कुछ कहलाए हुए भी अभिलाषित, साथ ही सच्चा उत्तर पाकर तब कल पातीं। इस बीच हेमनाभ सिर नीचा ही किये रहता। जब राजकुमारी के नेत्र हट जाते तब एक ही निमेष में, आँख भर के, उसका मुँह देख कर वह राजकुमारी से आज्ञा लेता।

क्या जाने क्यों पीठ फेरते ही उसके मुँह से एक दीर्घ निश्वास निकल जाती। इसी के संग उसे किसी और के निश्वास की आहट मिलती।

जब बिदा का समय आता, गहूला उसे अपना लीला-कमल देती और सहेजती—"देखो अपने कार्य में प्रमत्त न होना"

हेमनाभ उस कमल तथा आदेश को सिर चढ़ा कर विदा होता। किन्तु, एकान्त पाते ही उस कमल को छाती से लगाता। सम्भवतः इसके साथ ही वह आदेश भी उसके हृदय पर अङ्कित हो जाता रहा हो।

उस लीला-कमल को वह फेंक न देता। एक सुगन्धित रेशमी टुकड़े में लपेट कर उसे सौवर्ण-सूत्र से बाँध कर एक सुन्दर मञ्जूषा में रखता जाता। प्रत्येक पर स्वर्ण की एक मुद्रा भी बनवा कर ग्रथित कर देता। इन मुद्राओं पर पाने की तिथि और सम्वत् अंकित होते। अकसर उन्हें देख कर वह अतीत के स्वप्न देखता।

२

एक साल मन्दसोर में वर्षा न हुई। भयानक काल उपस्थित हुआ। उस समय रेल न थी कि अन्न कहीं बाहर जाता। पर वहाँ तो अन्न जाने का कोई प्रश्न ही न था। एक दाना भी तो न उपजा था। चारों ओर हाहाकार मच गया। लोग देश छोड़-छोड़ कर भागने लगे। हेमनाभ ने पीड़ितों को सहायता के लिये कई सागर आदि बनवाना आरम्भ किया पर यह सब ताड़ में तिल बराबर था।

राजस्व वसूल होने की कोई सम्भावना न थी। हेमनाभ के लाख सिर मारने पर भी कोई फल न हुआ। जब कर लेकर मथुरा में उपस्थित होने का समय बीत गया तब उसने सब हाल

सम्राट तोमारल के पास लिख भेजा, और अपने प्रान्त को उस वर्ष के लिए कर-मुक्त करने की सम्मति दी। किन्तु हूण-शासन विचार-मूलक न था। उसका मूलमन्त्र था तलवार का जोर, भयङ्कर रक्तपात, प्रलयंकर उत्पात, निर्दयता की पराकाष्टा।

आदेश हुआ, तलवार से कर वसूल करो। जो गाँव भूखे मर रहे हों उन्हें जला दो। ऐसों के मरने में ही उन्हें और साम्राज्य दोनों को सुख है। सहायता का काम बन्द कर दो, रिक्त राज्यकोष को और रिक्त न करो। नगर में मुनादी करा दो कि तीन दिन में लोग प्रान्त भर के लिए कर चुका दें, नहीं तो तलवार के जोर से कर वसूल करो। महीपति की आज्ञा शिरोधार्य न करने वालों के रक्त से उत्तप्त मही को सींचो।

हेमनाभ काँप उठा। इससे जघन्य और क्या आज्ञा हो सकती थी। वह अपने पद और अपने को कोसने लगा। किन्तु राजाज्ञा माननीय थी। क्या इसी दिन के लिए गहूला उसे प्रति बार अपने कार्य से प्रसन्न न होने के लिए चिताया करती? गहूला! राजकुमारी! क्या वास्तव में तुम हूण-रमणी हो?

चाहे आज हम लोगों को इस बात का आश्चर्य हो कि एक आदमी का, जिसके किसी पूर्वज ने अपने बाहुबल से राज्य स्थापना की हो, लोग क्योंकर मन्त्र-मुग्ध सर्प की भाँति—

बीसवीं सदी के यन्त्रों की भाँति—बिना कुछ कहे-सुने, आदेश, चाहे वह कैसा ही क्यों न हो, पालन कर सकते थे। लेकिन जिस जमाने में बुद्धि की परतन्त्रता थी और आज भी जहाँ बुद्धि की परतन्त्रता है, वहाँ के लोगों को अपनी इस हीनता का ज्ञान नहीं रहता। बुद्धि, तुझे परतन्त्र बनाने में जन्म ही से धर्म-शिक्षा का कितना हाथ है, इसका उत्तर तू ही दे।

हेमनाभ के लिये कोई मार्ग न था। उसने स्वयं राजनगर में जाकर सब बातें तय क्यों न कीं। सम्भव था कि वह मन्दसोर को इस कठोर आज्ञा से बचा लेता। वह अपने को धिक्कारने लगा। आज्ञा-परिवर्त्तन असम्भव था। भला हूण-राज्य के मुँह से जो बात निकल गई वह बदली जा सकती है? सेना से भी वह आज्ञा-पालन मात्र के लिए—विवेक और दया-पूर्वक आज्ञा पालन को नहीं कह सकता। क्योंकि हूणों ने अपना राज्य स्थिर रखने के लिए और अपनी नीति न बदली जाने के लिये सेना-विभाग नीचे से ऊपर तक, अपनी ही जाति के हाथों में रखा था।

लाचार होकर उसने अपने प्रान्त के सेनापति, देहधारी नरक, खरूतुन को सम्राट की आज्ञा सुना दी, फिर क्या था। मानों बहुत दिनों की बँधी नदी का बाँध तोड़ दिया गया हो। उस नर-राक्षस के आनन्द की सीमा न रही। गाँव-गाँव अश्वा-रोही हूणों के घोड़ों की टापों से, खाली घड़े की तरह, प्रति-

ध्वनित होने लगे। अनेक दीन जनों को कवलित करके कण्यार अपने दोनों अर्थों को सार्थ करने लगा। आकाश-मण्डल चिराइन महँक से भर उठा।

इधर मन्दसोर नगर में यह घोषणा होने लगी।

"सुनो नागरिको, मन्दसोर के आबाल-वृद्ध-वनिता नागरिको, परम भट्टारक परमेश्वर, सर्व-शत्रु-विजयी, सर्व-समर्थ, श्रीमान् महाराजाधिराज, दिगन्त व्यापमान कीर्त्ति-सितात पत्र-रवि-तेज-अहर्निश प्रकाशित, त्रैलोक्य, हरि सदृश श्री सेवित पाद-पद्म, अखण्ड चक्रवर्ती हूणेश्वर तोमारल देवका आदेश सुनो, इस घड़ी से तीन दिन के भीतर अपने प्रान्त की कर-मुद्रा, यदि राज-कोष में नहीं पहुँचा दोगे तो शस्त्रबल से सेनापति जी राजस्व इकट्ठा करेंगे और सदैव को तुम्हारा कलङ्कित नाम राज-द्रोहियों में गिना जायगा।

क्षत्रप हेमनाभ की आज्ञा से यह राज-आदेश घोषित किया जाता है।"

घोषणा से नगर में बड़ी अव्यवस्था फैल उठी। कितनों ही ने दुख सह कर मरने से एक बार ही तलवार से कट जाना अच्छा समझा। कितनों ने प्रतिष्ठा के विचार से विष खा लिया। कितने डर के मारे, मरने से दुःसह कष्ट भोगने लगे। कामुक अपने इन्द्रिय-सुख और कृपण अपने धन से विलग होने के सोच से विकल हुए जाते थे। माता अपने पुत्रों के लिए और

पत्नियाँ पतियों की चिन्ता से मरी जाती थीं। कुछ धूर्तों ने नगर से भागकर जान बचाने की सोची। पर हूण मूर्ख न थे। नगर चारों ओर से घिरा हुआ था।

तीन दिन बीतने पर हैं, पर कोष में कर का षष्ठांश भी नहीं पहुँचा। आज "नव-पत्रिका" का उत्सव-दिन है। जहाँ नगर पर आनन्द की घटा छाई रहती, आज वहीं आपत्ति के काल-मेघ घिर आए हैं। ऐसे समय में कुछ जिन्दा-दिल लोगों ने विचार किया कि जब मरना ही है तब उत्सव भूमि में एकत्र हो कर उसी का स्मरण करते-करते प्राण देंगे। अशोक-वाटिका में भीड़ होने लगी। धीरे-धीरे बहुत से लोग जुट गए। तीन दिन पूरे हुए। विपत्ति-मेघ जनता पर खड्ग की बिजली गिराने लगे। स्वयम् खरूतुन ने वाटिका घेर ली। ज्यों ही वह शस्त्र-पात की आज्ञा देने को था, कि हेमनाभ घोड़ा फेंकता हुआ आ पहुँचा। उसने ज़ोर से पुकार कर कहा—"सुनो खरूतुन, मैंने सेवक-धर्म का पालन कर दिया। अब नागरिक-धर्म का पालन करने आया हूँ, तुम सम्हल जाओ।

सारी भीड़ और सेना एक बार निस्तब्ध हो गई। हेमनाभ ने भीड़ को उत्तेजित करने के लिए दो ही चार वाक्य कहे, किन्तु उनका असर मन्त्र जैसा हुआ। उसका यही कहना था कि जब मृत्यु सन्मुख ही है, तब प्रेत-लोक क्यों जाते हो? वीरगति से स्वर्ग-लाभ करो।

भीड़ में क्या जाने कहाँ से शक्ति आ गई। हेमनाभ खरूतुन पर टूट पड़ा, और भीड़ सैनिकों से गुथ गयी। जिनके पास शस्त्र न थे, उन्हें भी सैनिकों से—हूण सैनिकों से—शस्त्र छीनने का बल आ गया।

खरूतुन मन्द पड़ता जाता था। किन्तु ज्यों ही हेमनाभ उस पर अन्तिम वार करे, पीछे से एक हूण ने उछल कर उसकी गरदन उतार ली। फिर क्या होना था। जिस लकड़ी के सहारे उस समूह का जर्जरित गात खड़ा था, जब वही टूट गयी तब वह कैसे सम्हलता? थोड़ी देर में यज्ञ में मारे गए पशु की भाँति, जिसके मुँह से शब्द तक नहीं निकलने दिया जाता, वह भीड़ वहीं ढेर हो गई। कोई भी वाटिका के बाहर न जाने पाया। रक्ताशोक रक्त से तर हो उठे। हूणों की तलवार जो बरसों से प्यासी थीं और मारे क्रोध के आप ही अपने को—जंग लगाकर—खाए जाती थीं, आज निरीहों का रक्त आकण्ठ पान करके तृप्त हुईं। किसी बड़े भारी यज्ञ के लिए इतनी बलियां चढ़ गईं।

२

विशाल पट मण्डप में उपहार की सभी वस्तुएं एकत्र हैं। सेनापति खरूतुन मन्दसोर से जो लूट का माल लाया है, उसे सजाकर रखवा रहा है। हूण सम्राट के आने की देर है। बड़े गर्व से वह अपनी भोंडी मूछों को ओठों से चबाता हुआ, अपनी चौड़ी और चिपटी तलवार के सहारे खड़ा है।

भारतीय प्रथा से, बन्दी-गणों ने हूणेश के आगमन की सूचना दी। दर्शकों पर उसका विलक्षण प्रभाव पड़ा। भीषण विजय के घोष में भयानक हूण शरीर, सज्जित भद्रासन के सहारे टिक रहा। वह रुधिर-दिग्ध उपहारों को लोलुप दृष्टि से देखने लगा। खरुतुन ने अपनी नृशंसता की वर्णना बड़े आतङ्क से की और हूण सम्राट ने अपना मुँडा सिर हिला कर उस कुकाण्ड का समर्थन किया। यह भयानक प्रसन्नता हूणों की विलास-वस्तु है—वे फिर आनन्द से चीत्कार कर उठे। इसी समय युवती राजकुमारी गहूला मन्द-गति से उस मण्डप में पहुँची। पुनर्वार चीत्कार हुआ, यह उसका स्वागत था। संस्कृत कवियों ने सम्भवतः उसे ही देखकर कहा है—"हूण-रमणी चिबुक प्रति स्पर्धिनारगकम्।"

वह स्वाभाविक लाली उपहारों को देखकर हँसने में और भी बढ़ी जाती थी। उसने स्नेह दिखाते हुए पिता की बाँह पकड़ ली और बगल के मंच पर बैठ गई। उन वस्तुओं से भारतीय कला का एक उच्च आदर्श, सुन्दर सोने के पुष्पों से सजी, चन्दन की एक मंजूषा जिसमें रत्न भी लगे हुए थे निकाल कर खरुतन गहूला के सामने ले गया। राजकन्या के लिए ऐसा ही सुन्दर उपहार उपयुक्त था। सम्राट भी प्रसन्न हुए। गहूला ने सम्राट पर कृतज्ञता की दृष्टि डाली, किन्तु खरुतुन उससे पुलकित हो उठा।

उपहार-वितरण अभी बाक़ी था। तोमारल और सामन्त-

गए उसी में लग गए। गहूला ने धीरे-धीरे वह मंजूषा खोली। देखा—कई सूखे हुए कमल स्वर्ण-मुद्रा-ग्रथित रेशमी कपड़े में लिपटे हैं। उसने मुद्राओं पर के लेख पढ़े। एक क्षण में अतीत के अनेक दृश्य उसके नेत्रों के आगे घूम गये। वह पीली पड़ गई, मंच के सहारे टिक गई। उसके हूण रक्त ने ही उसे मूर्छित होने से बचा लिया।

तोमारल ने अकारण उस ओर देखा। किसी जादू-टोने का ध्यान करके उसका उपचार होने लगा। क्षण भर में बड़े-बड़े हूण गुणी आ जुड़े। उपहार वितरण की सभा वहीं भङ्ग हुई।

४

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

गहूला की आँखों का वह रस न जाने कहाँ चला गया। उसका मुख निष्प्रभ हो उठा, उसके हृदय में उच्छ्वास लेने की शक्ति नहीं रह गई। अब उसका हाथ लीला-कमल बिना सूना रहता है।

आज वह स्फटिक आसव पात्र टूटा पड़ा है। उसके आसव घट कब के सूख गये हैं और उसका रत्न-चंपक यमुना में डुबा दिया गया है, उसका माधवी कुंज अब उजड़ा पड़ा है और उसके मयूर ताल पर नाचना भूल गए हैं।

जहाँनआरा

लेखक—सैय्यद क़ासिमअली विशारद, साहित्यालङ्कार

[सैय्यद क़ासिमअली जी मध्यप्रान्त के नरसिंहपुर ज़िले के साईं खेड़ा ग्राम के रहने वाले हैं। आप मुसलमान होते हुए भी एक प्रतिभा-शाली लेखक हैं। आप कहानी लेखक, नाट्यकार, तथा कवि हैं। आपने कई पुस्तकें लिखी हैं; आपका प्रसिद्ध नाटक 'संयोगिता' का हिन्दी में समुचित आदर हुआ है।

आपकी भाषा मुहावरेदार तथा प्राकृत है। आपसे हिन्दी संसार को बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं]

—:o:—

"वाह, तक़दीर भी कोई चीज़ है।"

"ज़रूर।"

"जब तो तुमने हज़ारों की दौलत पा ली और नाम का सिक्का जमा लिया।"

"सिर्फ़ उसकी रहमत से।"

"प्यारे आरिफ़? अगर तुम मेरे कहने से ईरान दरबार को छोड़ कर न भागते तो क्या ज़िन्दा बच सकते थे?"

"हरगिज़ नहीं ज़ीनत।"

ज़ीनत—ख़ूबी भी यह कि बादशाह ने तुमको ग़ुलामी के लिए ख़रीदा था। और ख़ुदा की शान से तुम्हारा सितारा एकदम से चमक पड़ा। बड़े-बड़े हकीम चार महीने तक सिर पटकते रहे, हज़ारों की दौलत रोज़ाना ख़ैरात में बाँटी गई, शाहज़ादी के तकिये के नीचे रोज़ एक हज़ार की थैली रखी जाती और सबेरे मिसकीनों को बाँट दी जाती थी। सैकड़ों क़ैदी रिहा कर दिये गए, मसजिदों में दिन-रात वज़ीफ़े ख़्वानी हुई, दुआएँ माँगी गईं और क़ुरान ख़्वानी भी की गई लेकिन आराम तुम्हारे हाथ से हुआ।

आरिफ़—मगर मुझे हैरत है ज़ीनत, शाहज़ादी की बाँदियाँ जो आग बुझाने की वजह से झुलस गईं थीं चल बसीं। मगर उनसे बदतर ज़्यादा ख़तरे में पड़ी हुई फूलों से भी ज़्यादा नाज़ुक जहाँनआरा बच गई।

ज़ीनत—और फिर उस पर तुर्रा यह कि आराम भी एक बाज़ारू नुसख़े से हो गया।

आरिफ़—इससे ही तो मालूम होता है कि "राखनहारा साँइयाँ-तो मार न सकिहैं कोय।"

ज़ीनत—सचमुच यह दिन जहाँनआरा के लिये बड़ा बुरा था। सारे मुल्क में मातमी बादल छा रहे थे। बादशाह की आँखों से आँसुओं का दरिया सा बह रहा था। मैंने तो सुना है कि बादशाह सलामत ख़ुद अपने दस्ते-मुबारिक से शाहज़ादी की ख़िदमत करते थे।

आरिफ़—उस कमबख़्त दिन को भुलाने के लिये ही यह जलसा मनाया गया था। सल्तनत भर में हर जगह रोशनी की गई। देहली और आगरा तो जवाहरातों से झिलमिला रहे थे। जगह-जगह शहर सजाये गये। गाने और क़िस्म-क़िस्म के बाजों के ताल केसिवा कुछ नहीं सुनाई देता था। बादशाह ने बेशुमार दौलत शाह-ज़ादी के आराम होनें की ख़ुशी में लुटा दी। शाही ख़ज़ाना ख़ाली कर दिया। अकेले मिसकीनों को कई लाख रुपया बाँटा गया।

ज़ीनत—प्यारे, मेरी बदौलत ही तुमको इतनी बेशुमार दौलत और पाँच हज़ार मंसबदारी मिली है। अब तो ग़ुलाम से जागीरदार हो गये हो। इसलिये कहीं बहक न जाना।

आरिफ़—हाँ, तुम्हारी बदौलत ही मैं ईरान से भागा था—लेकिन बहकने का सबब क्या हो सकता है !

जीनत—कइ इन्सान दौलत पाकर गुमराह हो जाते हैं और ऐशो-इशरत में भूलकर अपनों को ठुकरा देते हैं।

आरिफ़—नहीं प्यारी ! मैं कम समझ नादान नहीं हूं, जो शख्स अपनी असलियत का ख्याल रखता है। वह कभी बेदीन नहीं हो सकता।

जीनत—मरहबा ? मरहबा ??

"खूब नौरंगियाँ क़िस्मत का तमाशा देखा।"

[आ]

"मल्का, नूरचश्म जहाँनआरा मुग़ल सल्तनत का चिराग़ और मेरी आँखों का सुरमा है। इस वख्त वह कहाँ है ?" शाहजहाँ ने कहा।

मुम्ताजमहल—जहाँपनाह, दुख्तर अभी हरम से मौअल्लमा के पास "मूनि-सउल-अरय्या" किताब लिखने गई है।

शाहजहाँ—किस मौअल्लमा के पास।

मुमताजमहल—सतीउन्नीसा जो मेरे मातहत महल में रहती है और जिसका भाई तालिबे-आमिली मरहूम जहाँगीरी दरबार का शायर और जिसका खाविन्द नासिरा का इन्तक़ाल हो चुका है।

शाहजहाँ—ओहो, उसे तो मैंने ही राहतजान जहाँनआरा को तालीम देने के लिये मुक़र्रर किया था। वाक़ई, वह अस्मत-परस्त, आलिम फाज़िल है। फारस की होकर भी कई इल्मों में माहिर हैं। उसी ने शाहज़ादी को शायरी करना भी सिखाया है।

मुमताज़महल—वह नेकपरस्त दिन-रात इबादत ही में मशगूल रहती है, और जहाँनआरा को अभी तक तालीम देती रहती है।

शाहजहाँ—जहाँनआरा किस किताब को लिखने में लगी है।

मुमताज़महल—औलिया मुईनउद्दीन चिश्ती अजमेरी व उनके मुरीदों की सवाने-उमरी लिख रही है।

शाहजहाँ—सुबहान अल्ला! तुम्हारी कोख के इस हीरे से सच-मुच काफ़ी रोशनी होगी।

मुमताज़महल—(शरमाती हुई बात का रुख बदल कर) वली-अहद दाराशिकोह खुद फ़ुकराई में रहकर सूफ़ी उसूल रखता है। अब अपनी हमशीरा को भी फ़िलसफ़ा बना सूफ़ी कर लिया है।

शाहजहाँ—हाँ, बादशाह बेगम और दाराशिकोह दोनों इबादत-परस्ती के दीवाने हैं।

मुमताज़महल—आपने 'बादशाह बेगम' किसको मुख़ातिब करके कहा है?

शाहजहाँ—लाड़ली जहाँनआरा ही को, यह दर्जा उसके नेक काम, हकपरस्ती, सखावत, वगैरह-वगैरह औसाफ़ की वजह से मैंने दिया है।

"अब मेरी मग़रिब की नमाज क़जा हुआ चाहती है। इस लिये इजाजत हो।" शाहजहाँ का रुख पाकर मुमताजमहल चली गई, इतने में जहाँनआरा भी दाखिल हुई और बोली—"क़िबलाओ क़ाबाये प्यारे अब्बा, मैं आदाब बजा लाती हूँ।

—"जिन्दा रहो बेटी।" शाहजहाँ ने कहा—

जहाँनआरा—अब्बाजान!

शाहजहाँ—बोलो, प्यारी बच्ची!

जहाँनआरा—मेरे तनदुरुस्त होने की खुशी में आपने कई लाख रुपये लुटा दिये, लेकिन मुझे कुछ भी नहीं मिला।

शाहजहाँ हँसकर—तुझे.....तुझे—क्या चाहिए?

जहाँनआरा—जर नहीं, जमीन नहीं, और कुछ नहीं, सिर्फ़ एक खतावार की माफ़ी?

शाहजहाँ—कैसी खता? किसकी माफ़ी, कौन खतावार!

जहाँनआरा—आपके खाकसार बिरादर औरङ्गजेब की खता की माफ़ी!

शाहजहाँ—ओ भोली लड़की, तुझे उस जहरी नाग के करिश्मे नहीं मालूम।

जहाँनआरा—कुछ भी हो। मेरी बीमारी की खबर सुनकर दाराशिकोह, शुजा, मुराद, और औरङ्गज़ेब आए थे। औरङ्गज़ेब ने कुछ धोखा दिया इससे आपने उसका दर्जा छीन लिया है। लेकिन प्यारे अब्बा, मेरे इनाम में उसे फिर वही दर्जा अता किया जाय, यही मेरी ख़ुशी का बाइस होगा।

शाहजहाँ—ऐ नेकी के फ़रिश्ते! मैं उस बेरहम के फ़रेबों से ख़ूब वाकिफ़ हूँ। लेकिन तेरी वजह से मैंने उसे माफ़ किया।

जहाँनआरा—आफ़रीन, आप पर ख़ुदा की रहमत हो।

शाहजहाँ—क्यों बेटी! तू अपनी आला जिन्दगी को किस साँचे में ढाल रही है।

जहाँनआरा—दीन-दुखियों की ख़िदमत करना ही मेरा फ़र्ज है। मेरी निगाह में यह ऐशो-इशरत कुछ हस्ती नहीं रखती, क्योंकि यह दुनियाँ सराय-फ़ानी है।

शाहजहाँ—तो बेटी, क्या दरवेशी अख़्तियार करने से ही यह कारे-ख़ैर हो सकते हैं? क्या, मैंने यतीम-ख़ाने, लंगर-ख़ाने, ख़ैरात घर, वग़ैरह क़ायम नहीं किए।

जहाँनआरा—जरूर आपने बहुत बड़ा काम किया है, लेकिन इससे शाही फर्ज़ अदा होता है, न कि हुजूर की ज़ाते-पाक का।

शाहजहाँ—तो क्या अपने हाथ से जो खिदमत हो उसे ही ख़ुदा की राह में खिदमत मानना चाहिए?

जहाँनआरा—बेशक! उसे ही ख़ुदा की राह में खिदमत कह सकते हैं। सच्ची और आला खिदमत खुद करने ही से होती है।

शाहजहाँ—यह तेरा दिवानापन।

जहाँनआरा—अब्बा! "इन्सान वह है, जो किसी रंग में दीवाना है।"

[३]

"अजीज विरादर मैं बिलकुल सच कहती हूँ।"

औरङ्गजेब—रोशनआरा, इसका सबूत।

रोशनआरा—सबूत क्या! जहाँनआरा मेरी बड़ी बहन है, फिर ऐसी वेपरकी उड़ाने से मुझे क्या फ़ायदा होगा।

औरङ्गजेब—देख बहन, जहाँनआरा अस्मत-परस्त है। उस पर ऐसे फजूल हमले लागू नहीं हो सकते। जो शादी की जंजीर से नहीं बँधी जिसने अपना जिस्मो-जान क़ुरबान करके फ़कीरी अख्तियार कर ली है, उस पर फबतियाँ उड़ाना ठीक नहीं।

रोशनआरा—वह ही तो तेरे तख्तो-ताज के रास्ते में नुकीला काँटा है। उसी ने दाराशिकोह को "बुलन्द पुख्तर का खिताब बादशाह से दिलवा दिया। और उसी की शिफ़ारिश से दारा बादशाह की दाहिनी तरफ़ वाली सुनहरी मसनद पर बैठता है। और वह ही गद्दी का मालिक बन बैठा है।

औरङ्गजेब—अच्छा! (कुछ सोचता है)।

रोशनआरा—जब से वालिदा साहिबा का इन्तक़ाल हुआ है तब से जहाँनआरा का ही बोल बाला है। शाही मुहर उसी के कब्जे में है, सियासी मामलों में उसी की दुहाई दी जाती है, महल में उसी का सिक्का जमा हुआ है। जहाँ देखो वहाँ जहाँनआरा की तूती बोल रही है। बादशाह सलामत तो उसके इशारे पर नाचते हैं। वे शाही इनामात वह भी खूब हासिल करती है।

औरङ्गजेब—नौरोजी के जलसे में तो तुम्हें भी बादशाह ने २५ लाख रुपये इनाम मरहमत फ़रमाए थे।

रोशन आरा—भइया, दारा और जहाँनआरा तो हिन्दू मजहब पर शैदा हैं। न जाने कौन-कौन फ़कीरों के चक्कर में अन्धे हो रहे हैं; और खुद मिसकीनों, मुफ़लिसों की खिदमत करके भिखमंगे बन चुके हैं। वह शाही गद्दी के क़तई क़ाबिल नहीं हैं।

औरङ्गजेब—हक़ीक़त में दारा शिकोह हम चारों भाइयों में बड़े और मुन्सिफ़ हैं। मुझे तुमने वाहियात भुलावे में डालकर दक्खिन से क्यों बुलवाया है?

रोशन आरा—क्या तुम्हें शाही ताजो-तख़्त न चाहिये। भाई-जान, यह बड़ा अच्छा मौक़ा है। तुम बादशाह बन सकते हो; इसीलिए मैंने .ख़ुफ़िया तौर पर तुम्हें बुलाया है। देखो, "साँप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे।"

औरङ्गजेब—वह किस तरह।

रोशन आरा—देखो, इस वक्त बादशाह सख़्त बीमार हैं। बुद्धू दारा और बेवकूफ़ जहाँनआरा वालिद की ख़िद-मत ही में मशग़ूल हैं। मैंने चारों ओर ख़बर करवा दी है कि दारा बादशाह हो गया है। बस तीनों शाहजादों से लड़-झगड़कर हिक़मत अमली से तख़्तो-ताज छीन लो।

इस वातावरण से औरङ्गजेब विक्षुब्ध सा हो गया। वह जितना विद्वान् चतुर धर्मिष्ठ और राज्य-कार्य-पटु था, उतना ही निर्दय दम्भी, स्वार्थी भी था। उसपर रोशनआरा का जादू चल गया। जबरन गद्दी छीन लेने के नशे में उन्मत्त होकर औरङ्गजेब ने छल-बल से जङ्ग करके अपनी विजय-पताका फहरा दी और तख़्त-ताऊस पर बैठ गया।

उसने अपने बुजुर्ग बाप को .कैद कर लिया और भाई भतीजों के ख़ून से होली खेली। हृदय को कम्पित कर देने वाले इन लोम-हर्षण भीषण अत्याचार पूर्ण कुकृत्यों के कारण सारा साम्राज्य थर्रा गया, मानवता रो उठी। इतिहास के रक्त-रंजित पृष्ठ आज तक उस निरीह-रक्तपात के साक्षी हैं।

रोग जर्जरित वृद्ध शाहजहाँ का दुर्बल-हृदय इन अमानुषी अत्याचारों को सहन करने की सामर्थ्य न रख सका, उसकी कमर और भी टूट गई और उसने चारपाई पकड़ ली।

उसके उस असहाय और नीरस जीवन में सहानुभूति तथा प्रेम की जीवित प्रतिमा स्नेहमयी जहाँनआरा ही केवल सरसता का अमृत उँड़ेल कर उसे जीवित रखे हुए थी।

[ई]

"भाई मुझे वालिद की ख़िदमत से अलहृदा न करो।"
गिड़गिड़ा कर जहाँनआरा ने कहा।

औरङ्गजेब (.ग़ुस्से में)—तो क्या सारी ज़िन्दगी कैदखाने में बिताने का इरादा किया है ?

जहाँनआरा—अगर अपना फ़र्ज़ अदा करने में मौत का सामना करना पड़े तो भी मन्ज़ूर है।

औरङ्गजेब—अच्छा तो यही हो। प्यारे अब्बा की सेवा के लिए उसने अपने बहुमूल्य राजसी वस्त्र और लाखों का

आभूषण दीन दुखियों में बाँट दिए और बन्दीगृह के अगणित कष्ट झेलकर साधारण दासी की भाँति दुखीपिता की अपने हाथ से सेवा करने लगी।

साहस, त्याग और सेवा का ऐसा अनुपम उदाहरण संसार के इतिहास में विरला ही मिलता है। रोशनआरा और औरङ्गजेब के कुकृत्य तथा नृशंस कर्मों के काले पर्दे में जहाँनआरा का यह त्याग और सेवा स्वच्छ रङ्ग की शुभ्र छबि के समान चमक रही है।

सम्राट पद से च्युत, जरा-जर्जर और मति-भ्रान्त शाहजहाँ के भग्न-हृदय को बन्दी-गृह में वह नाना-प्रकार के उपदेशों द्वारा धैर्य देती थी। अपने ही हाथों से भोजन बना कर खिलाती, दवा देती, और कपड़े पहनाती थी।

वृद्ध केसरी सदृश शाहजहाँ का दुर्वहशोक धीरे-धीरे जहाँनआरा ने कम कर दिया। शाहजहाँ उस परिस्थिति में भी सन्तोष पाने लगा। धीरे-धीरे आठ वर्ष का लम्बा समय मृदुलता की मञ्जुल-मूर्त्ति देवी जहाँनआरा की संरक्षकता में काट कर अन्त में तख़्त-ताऊस का मालिक प्रभावशाली महान सम्राट इस संसार से चल बसा।

जहाँनआरा ने अपने पिता के साथ मरने का भरसक प्रयत्न किया—किन्तु उसे मरने तक की स्वतन्त्रता न थी। उस तपस्विनी के मातम को साम्राज्य ने मूक-वेदना से मनाया। लाखों

प्राणियों ने आँसू ढाल कर उस देवी को अर्घ्य दान दिया— किन्तु औरङ्गज़ेब न पसीजा। उसने जनाज़े को चुपचाप ताज-महल में दफ़न करवा दिया। बेचारी जहाँनआरा ने २००० अशर्फ़ियाँ दीन-दुखियों और भिक्षुकों को बाँटने भेजीं, वह भी औरङ्गज़ेब ने "ओहो, क़ैद में रह कर यह हौसला ?" कह कर छीन लीं।

जहाँनआरा के मुँह से केवल यही शब्द निकले—"ओ खुदा ! इस नाफ़रमान बेटे को माफ़ कर और इसके संग दिल पर अपनी रहमत को बरसा कर इन्साफ़ और इन्क़सारी का असर पैदा करे। उसने एक करुणाजनक-पत्र औरङ्गज़ेब को लिखा।

मोअज्जिज़ बिरादर ?

तुमने अपने तैमूर के नामी ख़ानदान में कालिख लगा कर दुनिया की तवारीख़ को ख़ूनी कारनामों के वर्क़ हमेशा के लिये सरसब्ज़ कर दिये हैं। जिस बाप ने तुमको पैदा किया—हाय, उसी को फ़ना कर के तुमने मर्दानगी का सेहरा बाँधा, और वह भी सिर्फ़ नाचीज़ तख़्तो-ताज के लिये। ओह ! इन्सानियत के पाक उसूलों के ख़िलाफ़ चल कर तुमने जिस बेरहमी से वालिद माजिद को ग़ारत किया, सिर्फ़ चन्दरोज़ा ज़िन्दगी के ऐश के लिये ? क्या तुम उसका अफ़साना तारीख़ के पर्दे पर से दूर कर के बतला सकते हो कि यह जाहो-हशर

क्या यह सब तुम्हारे साथ जायेंगे—क्या तुम अमर रहोगे ? याद रखो इन कारनामों का फ़ैसला आक़बत में जरूर होगा। ओफ़ ! नादान, उनके आख़िरी दीदार, उनकी रूह की फ़ातिहा, उनके मजार को देखने में तुम्हें कौन सा ख़ौफ़ था, ख़ैर जो हुआ सो हुआ कम से कम अब तो थोड़ी सी जिन्दगी को सुधार लो वर्ना दुनिया तुम पर हमेशा लानत बरसाती रहेगी।

तुम्हारी हमशीरा
"जहाँनआरा"

जब यह पत्र औरङ्गजेब को मिला तो उसकी अशान्ति बहुत बढ़ गई, सारे राज्य-कार्य को एक दम स्थगित करके वह एकान्त में दिन भर पत्र पढ़ कर सोचता रहा। उसकी काली करतूतों का वीभत्स दृश्य एक एक कर के उसके नेत्रों के सामने से निकलने लगे और वह पिता के मरने के एक मास बाद ही अपनी बहिन जहाँनआरा से मिलने आगरा गया। जहाँनआरा ने औरङ्गजेब की दशा देख कर उसे सान्त्वना दी, और जो पत्र अपने पिता शाहजहाँ से उसने औरङ्गजेब को क्षमा कराने के लिये अन्तिम समय लिखवाया था उसे दे दिया। उसमें औरङ्गजेब ने पढ़ा।

प्यारे बच्चे !

तू दौलत और ऐश के नशे में अन्धा होकर मुझे फ़ना कर चुका। मैं इस नेकी के फ़रिश्ते दुख़्तर जहाँनआरा की मिन्नत

से तेरा किया हुआ गुनाह माफ़ कर के दरगाहे इलाही से दुआ करता हूँ कि तू अब अपनी बाक़ी जिन्दगी शाहे-हक़ में लगा कर रहम-दिल हो जाय और आक़बत को सम्हाले। आख़िरी सलाम !

तेरा क़ैदी–शाहजहाँ

इस पत्र ने औरङ्गजेब के रहे-सहे ग़ुबार को अलग कर दिया और वह बेअख़्तियार हो जार-जार रोने लगा और जहाँनआरा के चरणों में सिर झुका कर बोला—"मेरी रहम-दिल बहन, अपने इस गुनहगार भाई को यह इजाज़त दो कि वह तेरी क़दम-बोसी करके अपने गुनाहों को माफ़ करा सके।

जहाँनआरा—बिरादर ! सच्चे दिल से तोबा करने से जब ख़ुदा माफ़ करता है तो मैं ऐसी सख्त-दिल नहीं हूँ। उठ, प्यारे भाईजान उठ, ख़ुदा तुझ पर रहम करे।

औरङ्गजेब—रहम की दरिया ! सचमुच तुम्हारे इन औसाफ़ से और जन्नती-नजारों से मैं वाक़िफ़ न था।...... अब मुझे माफ़ करो। कह कर बेहोश हो जमीन पर गिर पड़ा।

जहाँनआरा ने उठा कर औरङ्गजेब को गले लगाया—पश्चात् औरङ्गजेब ने १७ लाख की वार्षिक पेन्शन तपस्विनी जहाँनआरा के लिये मुक़र्रर कर दी और अपने साथ ही

सम्मान-पूर्वक देहली ले गया। रोशनआरा की ईर्षाग्नि भड़क उठी—फिर राज-परिवार में उसने डोरे डाले परन्तु "पाप सर पर चढ़कर बोलता है," आखिर उसका भण्डाफोड़ हो ही गया। औरङ्गजेब ने स्वर्ग की देवी जहाँनआरा को फिर से शाही सम्मान और ऐश्वर्य्य दे दिया, किन्तु वैराग्य की उस जीवित प्रतिमा जहाँनआरा ने सर्वस्व त्याग कर अपना सारा समय धार्मिक तन्मयता और दीन-दुःखियों की सेवा ही में लगा दिया। पिता के वियोग को अधिक न सह सकने के कारण पृथ्वी पर त्याग और उदारता का अनुपम उदाहरण छोड़ कर स्नेहमयी जहाँनआरा की दिव्य आत्मा इस नश्वर संसार से शीघ्र तिरोहित हो गई। अन्तिम समय सुनने वालों ने सुना—

"अगर तुमसे बने तो दूब तुरबत पर चढ़ा देना।
हजारों बेकसों का दिल हरा करती—हरी पत्ती॥

आज भी देहली में निज़ामुद्दीन चिश्ती की दरगाह के पास जहाँनआरा की क़ब्र पर फ़ारसी में लिखा हुआ उपरोक्त मिसरा हमें आदर्श तपस्या तथा त्याग का दिग्दर्शन करा देता है।

——:o:——
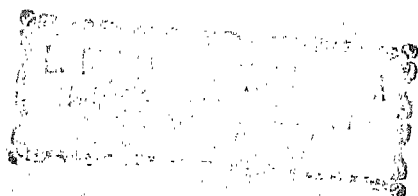
दीप-निर्वाण

[श्री रघुपति सहाय वर्मा एम० ए०]

आप प्रयाग के विश्व-विद्यालय में प्रोफेसर हैं—'कहानी-कला' के आप विशेष पारखी हैं। अपनी अद्वितीय शैली द्वारा आप अपनी कहानियों में नूतन चमत्कार उत्पन्न कर देते हैं।

इस कहानी को देख कर आपको उनकी विद्वता का परिचय स्वयं मिल जायगा।

—:o:—

भाई-बहन

अरावली की घाटियों के नीचे-नीचे तेज़ी से बहने वाले एक नाले के किनारे, जो घने जंगलों में पेच खाता हुआ बह रहा था, सिंहासन-च्युत राना प्रताप की लड़की चम्पावती बैठी हुई थी। उसी के पास उसका छोटा भाई सुन्दरसिंह भी

बैठा हुआ था। चम्पावती ग्यारह बरस की थी और उसका भाई चार बरस का। मनुष्य का भाग्य चञ्चल होता है। यद्यपि ये दोनों राजमहलों के अद्भुत दृश्यों के बीच जन्मे थे, तो भी अब बे-घर होकर अपने वीर-हृदय माता-पिता के साथ अरावली की निर्जन घाटियों में मुसीबत के कड़े तीरों का सामना कर रहे थे, जहाँ इनके मा-बाप अकबर के हाथों हार पर हार खाकर अपने बचे-बचाये साथियों—एक महान् और प्रबल संगठित सेना की टूटी-फूटी टोलियों के साथ बनवास का जीवन व्यतीत कर रहे थे। मुग़ल-सम्राट् की विजयी सेनाओं से तङ्ग आकर राना प्रताप अन्तिम और जीतोड़ युद्ध के लिए अपनी छिन्न-भिन्न सेना की टोलियों को इकट्ठा कर रहे थे, जिससे कदाचित् उनका खोया हुआ राज्य फिर प्राप्त हो जाय और राजस्थान का लुप्त चमत्कार नये सर से फिर जगमगा उठे।

वसन्त-ऋतु अपने पूरे यौवन पर थी। वह स्थान वृक्षों-पौधों, फूल और हरियाली से व्याप्त था, जिस पर डूबते हुए सूर्य की किरणें पड़ कर एक अद्भुत चमत्कार दिखला रही थीं। मालूम होता था कि प्रकृति अपनी अनन्त शक्ति के प्रस्फुटन और विकास से स्वयं अचम्भित हो रही है। इस स्वर्गीय छवि और छटा ने उस घाटी को सौन्दर्य का एक अलौकिक स्वप्न बना दिया था। इस दृश्य की ओट में चम्पावती और सुन्दरसिंह दो सूखी और मुरझाई हुई लताओं की तरह

दिखाई पड़ रहे थे, जैसे सुख की ओट में क्लेश और आनन्द की ओट में विस्मय चुपके-चुपके अज्ञात रूप से सिसकियाँ ले रहे हों। आये दिन की मुसीबतों ने, जान पर खेला देने वाले कष्ट, क्लेश और पीड़ा ने बचपन के निश्चिन्त जीवन को उदास और दुःखद बना दिया था। इनके सुकुमार और सुकोमल शरीर को विपत्ति की आँच ने झुलस दिया था और उनका गोरा रङ्ग झाँवर पड़ गया था।

चम्पावती फूलों के बीच में एक चिकनी चट्टान पर बैठी हुई अपने सूखे हाथों से फूलों का एक हार अपने भाई के लिए गूँध रही थी। सुन्दरसिंह उसके पास बैठा हुआ पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़ों से खेल रहा था, जो ढेर के ढेर नाले के किनारे पड़े हुए थे। रह-रह कर वह उनमें से एक टुकड़ा उठा लेता और नाले में फेंक देता था, जिससे पानी में छोटी-छोटी लहरें उठ कर भँवरों की शृङ्खला में परिवर्तित हो जाती थीं; जो बढ़ती-बढ़ती किनारे को चूमती हुई एक-एक करके अन्त में विलीन हो जाती थीं। लहरों का यों प्रकट हो कर लुप्त हो जाना देख कर बच्चे का नन्हा-सा दिल आह्लादित हो उठता था। लेकिन इस हर्ष और उछाह के साथ क्लेश के लक्षण भी उसके कुम्हलाये हुए चेहरे पर नजर आ रहे थे। बाल-क्रीड़ा में निमग्न उस छोटे से मुखड़े का रंग उड़ा जाता था और मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। चार बरस का बच्चा अपने दुःख को कुछ देर के लिए भूल

जाने का प्रयत्न कर रहा था। लेकिन यह भ्रम कब तक बना रहता।

थोड़ी देर के बाद उसने मुड़ कर अपनी बहन के मुँह की ओर देखा और कहा कि मुझे भूख लगी है। चम्पावती ने प्यार से उसका मुँह चूम लिया और भूखे भाई का दिल बहलाने के लिए उसने एक कहानी कहना शुरू किया, जिसे वह बच्चा ध्यान से सुनने लगा।

चम्पावती ने कहा—एक समय इस देश में एक सम्राट् रहता था, जो अपने राज्य के छिन जाने पर जंगल में जा रहा था। एक दिन उसको भूख लगी और उसने एक रोटी खाने को निकाली, लेकिन उसी वक्त एक कौआ आया और रोटी लेकर उड़ गया। सुन्दरसिंह ने कहा कि तब तो राजा रोने लगा होगा? चम्पावती ने हँस कर प्यार से भाई का मुँह चूम लिया और कहा—तेरी तरह वह बे-समझ बच्चा थोड़े ही था कि ऐसी ज़रा सी बात पर रोने लगे। सुन्दरसिंह ने कुछ परेशान-सा होकर कहा—तो क्या मैं बे-समझ बच्चा हूँ? उसकी बड़ी बहन ने कहा—हाँ, तू बड़ा बे-समझ और पाजी दुलारा है। बच्चे को यह फ़ैसला नहीं जँचा। उसने प्रतिवाद के साथ कहा—नहीं, मैं समझदार और अच्छा हूँ। चम्पावती ने इसका निर्दय उत्तर देते हुए कहा—अच्छे और समझदार लड़के खाने के लिए नहीं रोते।

लड़के ने विवश होकर जवाब दिया—"मैं क्या करूँ। मुझे भूख लगती है, इसलिए रोता हूँ। मुझे बड़ी भूख लगी है।" चम्पावती इसका क्या जवाब दे सकती थी? उसने कुछ कहना चाहा, लेकिन मुँह से कोई बात न निकली। यह ध्यान आते ही कि उसका भाई भूख से बहुत पीड़ित है, उसके दिल में दुख हुआ और जी भर आया। क़रीब था कि वह रो पड़े। लेकिन अपने आपको सँभाल कर अपनी आँखों से आँसू पोछते हुए उसने प्यार से भाई को गले लगा लिया और उसके गले में फूलों का वह हार डाल दिया जिसे वह अब गूँथ चुकी थी।

एकाएक सुन्दरसिंह चिल्ला उठा और अपने नन्हे से हाथ को अपनी गर्दन की ओर उठा कर बेबसी से बहन का मुँह देखने लगा। चम्पावती ने झट उसका हाथ गर्दन से हटा कर देखा कि वहाँ चमड़ा कुछ काला पड़ गया है और वह जगह सूज आई है। उसी समय उसने देखा कि एक बड़ी सी मधु-मक्खी बच्चे के गले में पड़े हुए हार के एक फूल से उड़ी जा रही है। बच्चे के गले में मधु-मक्खी ने डङ्क मार दिया था। सुन्दरसिंह तिलमिला-तिलमिला कर रो रहा था। उसे चुप करने के लिए चम्पावती ने कहा कि मैं तुमको रोटी खाने को दूँगी। यह कहते हुए वह उठ खड़ी हुई, लेकिन उसे चक्कर आ गया और वह फिर बैठ गई। कुछ देर के बाद वह उठी और नाले में जाकर कुछ पानी पिया। इससे वह सँभल गई। तब

भाई को गोद में लेकर वह अपने माता-पिता के निवास-स्थान की ओर जंगल में चली गई।

(२)

महाराज और महारानी

एक झोपड़ा जङ्गली झाड़ियों के कुञ्ज में एक सुनसान और निर्जन स्थान में बनाया गया था। चारों ओर ऊगे हुए जङ्गली बाँस की कोठियों ने उसके चारों ओर एक मोटी दीवार-सी बना रक्खी थी। बाँस काट कर एक पतली सी-राह बना दी गई थी। झोपड़े में राना प्रताप और महारानी गुनवती बैठे हुए थे। दोनों बहुत मोटा वस्त्र पहने हुए थे और चेहरे पर गहरी उदासी और विस्मय छाया हुआ था। लेकिन इस विपत्ति-ग्रस्त भेष में भी प्रचण्ड राजपूत-वीरता और अजेय राजपूत-साहस की झलक नजर आती थी। दोनों किसी दुःखद विचार में लीन जान पड़ते थे। थोड़ी देर के बाद राना ने एक ठंडी साँस भर कर कहा—गुनवती, भाग्य की लीला देखो। आज हमारा अभाग्य किस हद को जा पहुँचा है। आज पहली बार एक भूखा ब्राह्मण हमारे यहाँ से बिना कुछ पाये हुए पलट गया। भगवान् ने हमारी क्या दशा कर रक्खी है। हे ईश्वर, क्या हमारे कर्मों का यह फल मिलने वाला था। चित्तौर के राजाओं के वंशज जो कभी क्षत्रिय-जाति के मुकुट और

शिरोमणि थे; जो राजस्थान के सरदार थे, आज वे इतने कङ्गाल हो जायँ ! एक भूखे परदेशी ब्राह्मण को खाना न दे सकें और वह निराश लौट जाय ! वह लज्जा, यह अपमान असह्य है। मृत्यु से बढ़कर इस समय हमें कुछ भी प्यारा नहीं है। यह कहते-कहते राना बेसुध होकर जमीन पर गिर पड़े। महारानी ने उन्हें उठा लिया और उनका सिर गोद में लेकर आँचल से हवा देने लगीं। थोड़ी देर के बाद राना ने आँखें खोल दीं और वे उठ बैठे। महारानी ने कहा—राना, इतना दुख न कीजिए भगवान् दयालु हैं और इस नाजुक अवसर पर भी हमारी सहायता करेंगे। भगवान् से आप निराश न हों। आप अपना जी छोटा न कीजिए। यह बात चित्तौड़ के सिंह हृदय राना प्रताप को शोभा नहीं देती। राना ने कहा—गुनवती, आज पहली बार हम भूखे अतिथि को खिलाने में असमर्थ रहे। जब वह दूसरी बार यहाँ फिर आयेगा तो हम उससे क्या कहेंगे ? हम लोग कई दिनों तक कई बार भूखे रहे, लेकिन मेरा धैर्य्य नहीं छूटा। मेरा बच्चा अक्षयकुमार भूख से मर गया और मैंने दिल पत्थर का कर लिया। मेरी प्यारी लड़की स्वर्णकुमारी उपवास की पीड़ा से मर गई और मैंने कुछ नहीं कहा। तुम अपने ही को देखो कि कितने दिनों तक तुमको एक टुकड़ा भी खाने को नहीं मिला, तब भी मैं ढाढ़स बाँधे रहा। लेकिन आज—आह……। इन स्मरणों ने राना प्रताप को और भी व्याकुल कर दिया और वे फिर अचेत हो गये।

उसी समय चम्पावती अपने साईं को लेकर झोपड़ी में आ गई।

गुनवती—चम्पा, इस समय तू यहाँ क्यों आई?

चम्पावती—अम्मा मैं इस समय यहाँ न आती लेकिन...

गुनवती—लेकिन क्या?

चम्पावती—ब्राह्मण को हमारे यहाँ से भूखा नहीं जाना पड़ेगा।

गुनवती तूने अतिथ का हाल कैसे जाना?

चम्पावती ने सिर झुकाकर उत्तर दिया—मैं पिता जी की बातें सुन रही थी।

गुनवती (त्योरी चढ़ाकर क्रोध से)—तू दूसरों की बातें जासूसों की तरह छुप कर सुनती है?

चम्पावती—नहीं अम्मा। यह अपराध मुझसे पहली बार आज ही हुआ है। मुझे क्षमा करो। लेकिन पिता जी से कह दो कि अतिथि को भूखा नहीं लौटाना होगा। उसे मैं भोजन दूँगी।

राना चौंक पड़े और उठ बैठे। उन्होंने बेचैन होकर पूछा—क्या तू उसे खाना देगी? और तू खाना पायेगी कहाँ?

चम्पावती ने कहा—मैं अभी आई। और यह कह कर वह झोपड़े के बाहर चली गई।

सुन्दरसिंह रो-रोते थक गया था। थोड़ी देर में वह सिसकियाँ भर-भर कर सो गया।

कुछ देर के बाद चम्पावती दो छोटी-छोटी रोटियाँ लेकर आई। रोटियों को देखकर राना का मुख खिल गया और वे बहुत खुश हुए। उन्होंने आनन्दमय आश्चर्य से पूछा—चम्पा, ये रोटियाँ तुझे कहाँ मिलीं। चम्पावती ने कहा—कल रात को मुझे भूख नहीं थी, इसलिए मैंने अपनी रोटियाँ बचा रक्खी थीं। आज मैंने कुछ जङ्गली फल खा लिये (यह दिव्य झूठ था। बात यह थी कि सुन्दरसिंह का अक्सर भूख से व्याकुल होकर रोना चम्पावती से देखा न जाता था। इसलिए वह भूखी रह गई और बच्चे के लिए रोटियाँ रख छोड़ीं!) और सुन्दर के लिए वे रोटियाँ मैंने बचा रक्खीं। लेकिन वह सो गया है और अब मैं ये रोटियाँ अतिथि को दे दूँगी। ये बातें सुनकर राजा का दिल प्रेम से भर गया और उनकी आँखों से आँसू उमड़ आये। उन्होंने चम्पा को गले लगा लिया और कहा—बेटी, ईश्वर तेरा भला करे।

(३)

अतिथि की वापसी

राना प्रताप को इस तरह जङ्गलों में रहते हुए कई बरस हो चुके थे। उनकी दशा इस हद को पहुँच गई थी कि अक्सर

उन्हें और उनके परिवार को कई दिन तक भूखा रह जाना पड़ा था। अब भी कुछ वफ़ादार आदमी अपने अभागे स्वामी का साथ दे रहे थे और उनकी सेवा कर रहे थे। आस-पास के गाँवों से जो कुछ कभी-कभी मिल जाता था, उसी से राना और उनके साथियों की किसी तरह गुज़र हो जाती थी। राज-परिवार अब इस तरह जी रहा था! लेकिन इस सारे प्रयत्न से बस इतना ही हो सकता था कि उनमें हर एक कभी एक रोटी कभी आधी रोटी पा जाता। राना और महारानी कभी-कभी दो एक कौर शरीर और प्राणों की रक्षा के लिए खा लिया करते थे। अपने हिस्से की बची हुई रोटियाँ वे अपने बच्चों को दे दिया करते थे।

ये कड़ी मुसीबतें महाराना कई साल से उठा रहे थे। स्वतन्त्रता के लिए दरिद्रता और पराभव के अन्तस्तल की ख़ाक छाननी और फाँकनी पड़ी थी। अपने पक्ष की प्रेरणा ही के सहारे इस परीक्षा में वे अपने आपको सँभाले हुए थे और वीरता से मुसीबत के तीरों का सामना कर रहे थे। स्वतन्त्रता की झिलमिलाती हुई ज्योति की ओर घायल पग बढ़ाते हुए, कठिनाइयाँ झेलते हुए लोहू का घूँट पी-पीकर, आशा से निराशा की तरह लिपटे हुए इस नीरव सुनसान दृश्य में अकेले बढ़ने वाले इस व्यक्ति के दृढ़ता, वीरता और अलौकिकता-पूर्ण विश्वास पर एक अद्भुत करुण-प्रकाश पड़ रहा है।

कल सुबह राना के आदमी कुछ आटा लाये थे। जब उसकी रोटियाँ बनीं तब वे इतनी कम थीं कि राना के सिर्फ़ कुछ साथी और राना के बच्चे एक-एक या दो-दो रोटियाँ खा सके थे। राना और महारानी ने कुछ नहीं खाया था। चम्पावती इसे जानती थी। इसी से उसने भी अपना हिस्सा नहीं खाया था। वही दो बचाई हुई रोटियाँ उसने लाकर राना को दी थीं। आत्म-बलिदान का यह उदाहरण देख कर राना का जी भर आया था।

लेकिन इन रोटियों को देख कर राना की चिन्ता पूरी तरह दूर न हो सकी। उन्हें यह फ़िक्र पड़ गई कि एक भूखे आदमी के लिए और रोटियों की ज़रूरत है। उन्होंने रानी गुनवती के कान में यह बात कही, क्योंकि अपनी लड़की के त्याग का महत्त्व लड़की के सामने कम करने का साहस उन्हें न हुआ लेकिन सहानुभूति से प्रेरित होकर उस लड़की ने तुरन्त कहा—पिता जी, मेरे पास दो पैसे हैं और इनका आटा मँगा कर हम लोग कुछ और रोटियाँ बना लेंगे जो अतिथि के लिए काफ़ी हो जायँगी। राना ने बेचैनी से वे पैसे लड़की के हाथ से ले लिये और झपट कर बाज़ार की तरफ़ चले गये।

राना के पलटने के थोड़ी ही देर बाद ब्राह्मण फिर आया। चम्पावती ने पहले ही से झोपड़े का सहन साफ़ कर रक्खा था और वहाँ एक कुशासन बिछा दिया था। अतिथि की उम्र

पचास बरस मालूम होती थी। और भिखमंगों का भेस होने पर भी उसके मुख पर एक तेज बरस रहा था। झोपड़े के निकट आकर उसने आवाज़ दी—"एक भूखा ब्राह्मण भोजन माँगता है। ईश्वर तुम्हारा भला करे।" चम्पावती झोपड़े से निकल आई और उससे कुशासन पर बैठ जाने के लिए कहा। जब वह बैठ गया तब उसने चम्पावती से पूछा—बेटी तू कौन है? चम्पावती ने कहा—"मैं आपकी सेवक, रानाजी की पुत्री हूँ।" अपरिचित अतिथि के मुख पर करुणा और प्रशंसा के भावों की एक हल्की-सी झलक नज़र आई। चम्पावती वह रूखा-सूखा भोजन लाने झोपड़े में गई। थोड़ी देर में एक केले के पत्ते पर दस छोटी-छोटी रोटियाँ और कुछ चटनी लेकर और गिलास में पानी लाकर उसने रख दिया। अतिथि खाने लगा।

चम्पावती (संकोच से सिर झुका कर)—महाराज हम लोगों की दरिद्रता की वजह से आपको ऐसा रूखा भोजन खाना पड़ रहा है। ऐसा खाना भला आपको क्या रुचेगा?

अतिथि—नहीं बेटी, कोई हर्ज नहीं। यह खाना बड़ा स्वादिष्ट है। ईश्वर तेरा भला करे!

जब वह भोजन कर चुका तब जाने के लिए तैयार हुआ। चम्पावती के मुख पर आनन्द और सन्तोष झलक रहा था। यह क्षणिक आनन्द उसे बड़े महँगे दामों पर मिला

था और उसकी ख़ुशी भी ऐसी ही थी, जैसा उसका त्याग था।

जाते हुए उस तृप्त ब्राह्मण ने चम्पावती को आशीर्वाद दिया और कह गया कि रात को मैं फिर राना के दर्शन करने आऊँगा। चम्पावती झोपड़े में यह ख़ुशख़बरी सुनाने के लिए गई कि ब्राह्मण सन्तुष्ट होकर वापस गया ताकि उसके माता-पिता भी उसके आनन्द के भागी बन सकें। लेकिन भूख ने उसे बहुत निर्बल कर दिया था और वह द्वार पर ही अचेत होकर गिर पड़ी।

(४)

दीप-निर्वाण।

चारों ओर अँधेरा था। घनी झाड़ियों और वृक्षों के झुण्ड से हवा की तेज़ सनसनाहट सुनाई दे रही थी। डालियाँ हिल रही थीं, और पत्तियाँ और झाड़ियाँ थरथरा रही थीं, मानो काली रात से डर रही हैं। एक चटाई पर एक लड़की का छीन-हीन शरीर एक धुँधली-सी घायल लकीर की तरह प्राण-पीड़ा से बल खाता नज़र आ रहा है। यह चम्पावती थी, जो अपनी मरण-शय्या पर पड़ी साँस तोड़ रही थी। उसके पास राना प्रताप और महारानी गुनवती स्तम्भित और बेबस बैठे हुए थे। सुन्दरसिंह जाग पड़ा था।

सुन्दरसिंह—अम्मा, दीदी जी इस तरह क्यों पड़ी हुई हैं ?

रानी गुनवती (आँसू पोंछते हुए)—बेटा, दीदी जी सो रही हैं। फिर सन्नाटा छा गया।

कुछ देर के बाद महाराना बोले और रानी से कहा—तो अकबर को हम लोग क्या जवाब भेजें। अगर हम उनको अपना सरताज मान लें तो वे हमसे सुलह कर लेंगे। उनको मुझसे सुलह करने की बड़ी इच्छा है। मालूम नहीं, हमारी बेबसी का हाल उन्हें कैसे मालूम हुआ। उनको हमारी दुर्दशा पर बड़ा दुःख है। वे हमारे बच्चों के नाम पर सुलह के लिए आग्रह कर रहे हैं। सिर्फ नाम-मात्र को सम्राट मान लेने पर सुलह कर लेने को तैयार हैं। अगर उनका यह प्रस्ताव मुझे मन्जूर हो तो मैं जहाँ चाहूँ वहाँ चला जाऊँ। हमें किसी तरह नहीं छेड़ेंगे, इसका वादा करते हैं।

उसी समय झोपड़े के बाहर किसी की आहट मालूम हुई। राना चौंक पड़े और पूछा—कौन है ?

इसका कोई जवाब न मिला।

गुनवती—शायद पत्तों के खड़खड़ाने की आवाज़ थी।

राना प्रताप—मैं समझता हूँ कि अकबर उदार-दिल का आदमी है।

यह शब्द सुनते ही, जैसे उसमें बिजली की शक्ति आ जाय, चम्पावती उठ पड़ी और अपने आधे धड़ को अपने दो मुर्झाए हुए हाथों के सहारे उठ कर काँपते हुए और मानो मौत से लड़ते हुए उसने कहा—पिता जी आज अपने अकबर की उदारता का पता चलाया है, कल उसके दिये हुए किसी भारी ओह्दे को आप स्वीकार कर लेंगे और परसों उसकी गुलामी के घमण्ड से दम भरेंगे। लेकिन याद रहे कि उस दिन आप राजपूतों की स्वतन्त्रता की जड़ पर कुल्हाड़ी मार देंगे। क्या वह कहता है कि आपके बच्चों के कष्ट पर उसे दया आ रही है? कदाचित उस भोले सम्राट् को यह नहीं मालूम कि राना के लड़के ऐसे धान-पान नहीं हैं, ऐसे कोमल नहीं हैं। क्या सम्राट हल्दीघाटी की लड़ाई भूल गये?

यह कह कर वह बेदम होकर गिर पड़ी। राना और रानी सन्नाटे और आश्चर्य से उसकी ओर देखने लगे। महारानी ने उसके ललाट पर हाथ रख कर देखना चाहा कि ज्वर से उसे "बाई" (वायु) तो नहीं हो गई है?

चम्पावती (बहुत धीमी आवाज़ से, जिसके मन्द स्वर मानो किसी और दुनियाँ से आ रहे हों)—नहीं माँ, मुझे बाई नहीं हुई है। पिता जी, आप अकबर का कहना न मानिए।

राना (ओज और दृढ़ता के साथ)—बेटी, मैं तेरी मरणशय्या के पास शपथ खाता हूँ कि जब तक मेरी साँस में साँस

है, चित्तौड़ के लिए लड़ूंगा। सिर्फ एक क्षण के लिए सन्तान के मोह ने मेरे कर्तव्य-पालन के निश्चय पर विजय प्राप्त कर लिया था; लेकिन अब फिर मैं अटल और दृढ़ हो गया हूँ। जब तक तुम जैसी सन्तान मुझे उभारती रहेगी, मैं अकबर से हार नहीं सकता।

चम्पावती—ऐसा ही होगा?

"हाँ ऐसा ही होगा।" यह आवाज झोपड़े के बाहर से आई और उसी समय सम्राट् अकबर ने भिखारी के भेस में झोपड़े में प्रवेश किया।

चम्पावती—अरे यह तो अतिथि हैं!

अकबर—राना, तुम्हारे साहस और तुम्हारी सन्तान की वीरता ने मुझे जीत लिया है। तुम धन्य हो। भारत-भूमि ऐसी सन्तान पर घमण्ड करेगी। मैं तुम्हारे इस अद्वितीय देश-प्रेम का साक्षी होकर तुम्हारी स्वतन्त्रता का भी साक्षी और संरक्षक होता हूँ। अपना हाथ लाओ।

दोनों सम्राटों की आँखों में आँसू झलक रहे थे। और वे कुछ देर तक हाथ में हाथ डाले चुपचाप खड़े रहे। अकबर ने राना प्रताप को गले से लगा लिया और जाने की आज्ञा माँगी।

उसी समय सहसा हवा के झोंके से दीप बुझ गया। जिस चटाई पर चम्पावती पड़ी हुई थी, कुछ उस पर हलकी-सी हरकत हुई। अकबर और राना दोनों उसकी ओर मुड़े। चन्द्रमा के क्षीण प्रकाश में उन्होंने देखा कि चम्पावती मरी पड़ी थी।

झोपड़े के बाहर हवा की सनसनाहट और भी तेज हो गई थी, जो मृत्यु की नीरवता को बढ़ा रही थी।

स्वयम्वरा

[श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी']

[मोहनलाल महतो "वियोगी', हिन्दी के एक लब्ध प्रतिष्ठ कवि तथा लेखक हैं। आपकी कलापूर्ण तथा मौलिक कहानियों ने हिन्दी संसार में सिक्का जमा लिया है। केवल साहित्य-सेवा ही नहीं बल्कि चित्रकला में भी आप प्रवीण हैं। आपके बनाए हुए व्यंग चित्रों को बहुत पसन्द किया जाता है।]

—:o:—

कवि ने क़लम रख दी। चित्रकार की तूलिका रुक गयी। स्वयं सौन्दर्य अवाक् हो गया। बसन्त की लुनाई में लोग दोष देखने लगे तथा चन्द्रमा के कलंक की चर्चा ज़ोरों से होने लगी।

किसी ने कहा—"इसने लूट लिया है"; किसी ने कहा—"आश्चर्य"।

\+ + + +

मगध की राजकुमारी का नाम था 'ऊषा'। वह ऊषा अपने अचिरस्थायी यौवन की मदिरा की खुमारी को रक्तिम आभा में प्रकट करती है, और यह 'ऊषा' चिर-वसन्त की मादकता को दोनों हाथों से बखेरती थी। उस ऊषा में नीरव कामना का घायल-रूप दिखलाई पड़ता है और इस 'ऊषा' के कण्ठ में संगीत तथा हृदय में स्पन्दन।

क्षितिज की गोद में ही उदय और अस्त होने वाली उस ऊषा से इस 'ऊषा' में बड़ा अन्तर था।

देखते-देखते कुमारी 'ऊषा' के उपवन में वसन्त की बयार डोलने लगी। फूलों से वृक्ष लद गये और पराग से फूलों का माथा झुक गया। सारा उपवन अज्ञात पुलक के स्पर्श से थर-थरा उठा। आँखों को उस ओर देखने के लिए कोई प्रेरित करने लगा तथा मन को आकर्षित होने का कोई उपदेश देने लगा। पाठक कहेंगे कि वसन्त-वर्णन में एक कमी रह गयी। फूल पर भौंरे नहीं गुँजाये गये।

पर, वह उपवन ऐसा था कि उसके भीतर भौंरों का घुसना अंगार-जैसे पलास के फूल से आग लगाने की चेष्टा करने के बराबर ही समझना चाहिए।

मगधेश्वरी के श्री-मुख से इस वसन्त के आगमन की वार्ता धड़कते हुए हृदय को थाम कर मगधेश्वर ने सुनी।

वृद्ध मंत्री बुलाये गये। द्वार बन्द कर मंत्रणा-गृह में गम्भीर विवेचना होने लगी।

वसन्त को इस विवेचना की परवा क्या? वह धीरे-धीरे प्याले मे 'शीराजी' ढाल कर लता-पुष्पों को पिलाने लगा। जीवन में जागृति और जागृति में जीवन का स्पन्दन होने लगा।

(२)

यह तो हुआ कवित्व-प्रदर्शन। कवि होने के कारण मेरा अभ्यास बिगड़ गया है। चन्द्र को कुमुद-वल्लभ कह कर द्रविड़-प्राणायाम करने की लालसा में उत्तेजना की झलक दिखाई पड़ती है। सीधी बात यह है कि 'ऊषा' अपने जीवन का पन्द्रहवाँ फाटक पार कर सोलहवीं ड्योढ़ी पर आ खड़ी हुई। यही चिन्ता का कारण था।

लोगों का यदि वश चलता, तो वे कन्या को सदा पाँच वर्ष की पुतली बना कर ही रखे रहते, तथा चन्द्रमा को तीसो दिन पूर्णिमा का अभिनय करते रहने के लिए बाध्य करते। पर, समझदार विधाता ने मनुष्यों में लालसा का तूफान बन्द कर के लाचारी का मंत्र पढ़ कर द्वार बन्द कर दिया है। बस, कल्पना

करो; खूब सोचो, आकाश पाताल के कुलावे मिलाने के मंसूबे बाँधा करो, पर "होइहै सोइ जो राम रचि राखा।" धिक्कार है पराधीन जीवन को!

वृद्ध मंत्री ने सोचा कि 'ऊषा' का व्याह तो होगा ही, पर, इससे राज्य को क्या लाभ? अत्यन्त विचारशील मनुष्य 'लाभ' का विष खिला कर अपने आदर्शों की हत्या कर डालते हैं।

राजा बोले—"क्यों मंत्री, रोहिताश्वगढ़ तो स्वतन्त्र है?"

मन्त्री की बाछें खिल गयीं। आकाश-कुसुम की माला सत्य-रूप धारण कर गले में झूल गयी। मंत्री ने कहा—"हाँ प्रभो! बस, यही शर्त ठीक है।" जो रोहिताश्वगढ़ के गर्वी सरदार का सर काट कर—"

महाराज बोले—"यह क्या? अरे, सीधी बात यह है कि रोहिताश्वगढ़ को अपने भुजबल से जीत कर, जो मगधेश्वर के चरणों में अर्पित कर देगा, उसी महाभाग से 'ऊषा' का व्याह कर दिया जायगा।"

मन्त्री ने कहा—"ठीक"।

भविष्य के परदे में छिप कर, नियति हँस रही थी। कैसी हँसी हँस रही थी? वैसी हँसी हँस रही थी, जैसी उसने जनकपुर में धनुष-भंग के समय हँस कर विधाता को चिंतित

कर दिया था; कुरुक्षेत्र में हँस कर योगीश्वर को परेशान कर दिया था; पृथ्वीराज की युद्ध-यात्रा के समय हँस कर कविचन्द्र को व्याकुल कर दिया था।

खेद है कि मन्त्री के कानों में इस अट्टहास की आवाज़ प्रवेश न कर सकी।

(३)

भयंकर वन, स्वर्णभद्रा का विस्तृत तट, रोहिताश्व की दुर्जय दीवारें, विशाल फाटक, प्रकांड बुर्जें।

सात-सात विवाह-लोलुप राजाओं ने काल के कुटिल तथा भयंकर चक्र के नीचे खेलना प्रारम्भ किया। मनुष्य की लाशों पर बैठ कर कौवों ने स्वर्णभद्रा की तीखी धारा पर उत्सव मनाया। सारा वन हाथियों की चिग्घाड़ से काँप उठा। भगवान बुद्ध की तपोभूमि की, रक्त से पूजा की गयी।

बुद्ध गया में भगवान की मूर्ति काँप उठी। तीन वर्ष तक तलवारों पर मृत्यु का नृत्य होता रहा। चौथे वर्ष की वर्षा-ऋतु के प्रारम्भ होते ही सातों नृपतियों की रंग-बिरंगी ध्वजाएँ रोहिताश्व की चूड़ा पर सदर्प उड़ने लगीं। गढ़पति हाथ-पैर बाँध कर पहाड़ से लुढ़का दिया गया। उसकी स्त्री-बच्चे भगवती रोहिताश्वगढ़ेश्वरी के आगे काट डाले गये। यह पूजा, विजयो-

झास में सारे राजाओं की ओर से की गयी थी। धन्य पुजारी ! धन्य पूजा !!

रक्तपात से प्रारम्भ कर के रक्तपात से ही इस रण-यज्ञ का अन्त हुआ।

यह समाचार बड़े समारोह से पाटलिपुत्र पहुँचाया गया। आनन्दाश्रुति आँखों से राजा ने मन्त्री को देखा और गर्व से सिर उठा कर दूत की ओर।

× × × ×

एक बार फिर मंत्रणागृह में मंत्री और राजा जा बैठे। इस बार प्रश्न यह था कि इन सात-सात विजयी-राजाओं में से किसे ऊषा का पात्र चुना जाय। अन्त में वृद्ध मन्त्री ने यह निर्णय किया इन सात अभागों को कहा जाय कि ये आपस में यह तय करें कि 'ऊषा' किसको ब्याही जाय। आप इस प्रश्न को अपने हाथ में न लें।

राजा ने मंत्री की सूझ की प्रशंसा की। नियति फिर हँस उठी। इस बार उसकी हँसी 'ऊषा' ने सुन ली।

यथासमय संवाद पाकर सातों वीर तलवार की कसौटी पर अपने भाग्य का निर्णय करने के लिए पाटलिपुत्र के मैदान में उतर पड़े। इच्छा-पूर्ति की लालसा के सामने प्राणों का मूल्य तलवार के 'वार' के बराबर है। यह वीर-धर्म का तत्व है।

समझदारों की एक टोली ने मन्त्री को सराहा और किसी ने राजाओं की निर्बुद्धिता पर राई-नोन वारने का प्रस्ताव किया।

(४)

दुखी को देख कर सहृदय में सहानुभूति की पीड़ा उत्पन्न हो जाती है। ग्रहण लगे हुए चन्द्र-सूर्य के लिए लोग कितना स्नान-दान करते हैं? "ऊषा" के मूर्छित सौन्दर्य की ओट में पीड़ा की रावटी लगी हुई थी। 'प्रकाश' कहने ही से बोध होता है 'अन्धकार' का। सुख ही दुःख का परिचायक है। "ऊषा" सुख के पालने पर भूल रही थी। दुःख का बीज उसके सुख के रक्त में डूब कर अब तक जीवित था, ताजा था।

कंस के बन्दी-घर की रोटी खाकर ही वसुदेव जी रहे थे और उसी अवस्था में उन्होंने कंसारि को जन्म दिया। मानो किसी बहाने से अपना अन्न खिला-खिला कर ही अपने शत्रु को अभागे कंस ने पाला।

'उषा' की एक सखी थी 'रजनी'। उसने सारी कहानी कह सुनायी।

"मेरे लिए इतना रक्तपात!"

यह वाक्य 'ऊषा' के प्राणों में गूँजने लगा। सोते-जागते, उठते-बैठते, बस, यही कचट, यही वेदना, यही पछतावा। फूल में कीट ने अपना घर बना लिया। मधु के छाते में किसी ने विष की डली डाल दी। ईख जिस मधुर रस को अपने प्राणों की तरह छिपा कर रखती है, बिना भली-भाँति अपने को

मिटाये एक बूँद रस देना वह नहीं चाहती, उसी रस को समय आते ही अपने-आपको चूल्हे में जला कर सुखा देती है; ढोका बना कर ही शान्त होती है। यही है संसार का सुन्दर नियम सभ्यजन इसका समर्थन भी बड़े उत्साह से करते हैं।

"ऊषा" ने मन में सोचा कि "चिता-सुन्दरी" के साथ गाढ़ालिंगन-पूर्वक सोने का हक उसी महाभाग को है, जो उसके लिए अपने प्राणरूपी हीरे की खान को लुटा देता है। बस, निर्णय हो गया। अकारण बैठ कर रोने-पीटनेवाले ढोंग दिखला कर घर की राह नापते हैं। चिता-सुन्दरी का गठ-बन्धन तो सर्व-त्यागी से ही होता है!

\+ + + +

यह अस्तप्राय भानु! मानो, दिन का शीश काट कर रजनी के चरणों पर कोई प्रबल पराक्रमी-विवाहार्थी अर्पण कर रहा हो। उधर, धीरे-धीरे संध्या का दिगन्त तक फैला हुआ आँचल पश्चिम की ओर सिमट रहा है। मानो, उस ओर दुःशासन अपनी इतिहास-प्रसिद्ध लीला की पुनरावृत्ति करने की चेष्टा कर रहा हो।

संध्या का अन्त; रजनी का आगमन और यह तृतीया का वंक-शशि। मानो नक्षत्र-रूपी मोतियों के खेत को काट कर

किसान ने अपनी चाँदी की हँसली फेंक दी हो या यह परशुराम के भयङ्कर परशु का तीखा फल हो। माता रेणुका की हत्या कर लेने के बाद उन्होंने दण्ड से निकाल कर अपवित्र "फल" को आकाश-गङ्गा के तट पर फेंक दिया हो। चन्द्रमा का अस्त होना ! गाढ़ा अन्धकार !!

अब, उपमाओं से काम नहीं चलेगा। पाठक अवश्य ऊब उठे होंगे।

वर्षा की मध्य निशा। पाटलिपुत्र के तट पर सात-सात राजाओं ने जहाँ तलवार चला कर "ऊषा" के लिए रक्त बहाया था, वहीं आज एक भैरवी दिखलायी पड़ती है। एक हाथ में प्रज्वलित खप्पर, दूसरे में नंगी तलवार, आँखों में ज्वाला, हृदय में ज्वाला, प्राणों में ज्वाला ! इस ज्वालामयी मूर्ति को मैं 'ऊषा' कह कर किस प्रकार पुकारूँ। आग के अँगारे को मक्खन कहने का साहस मुझमें नहीं।

इस रमणी-मूर्ति ने मरे हुए एक राजा के शव को बड़े कष्ट से हाथी-घोड़ों की लाशों के बीच से निकाला। नयी उम्र, मसें भींग रही थीं। चौड़ी छाती, उन्नत ललाट। साक्षात् अभिमन्यु उफ् ! उफ् !!

पगली भैरवी ने अपने गले में से रक्त-जवा की माला उतार कर उस मृत-राजा के गले में डाल दी और बिजली की तरह

चमक कर अपने कोमल हृदय में तलवार घुसेड़ दी। एक पतली चीख ! रक्त की एक पतली धारा !!

घटा घिर आयी। मनुष्य-मांस-भक्षी पशु-पक्षियों के कलरव के साथ गङ्गा की राक्षसी हँसी मिल गयी। देखते-देखते मूसलधार वृष्टि दोनों के निर्दोष रक्त को एक साथ मिला कर गंगा की पवित्र धारा की ओर ले चली। यह हुआ विवाहोत्सव !

+   +   +   +

कोई, सौ वर्ष बाद—जब—एक चीनी यात्री भारत आया, तो उसने पाटलिपुत्र में गंगा के तट पर मर्मर-गठित एक समाधि-मन्दिर देखा। उस समाधि-मन्दिर पर लिखा था

"स्वयम्वरा राजकुमारी ऊषा और तक्षशिलाधीश भद्रसेन"

मगध-राज-श्री, क्षीर-सागर में चली गयी थी। प्रासाद के खंडहर में तत्कालीन राजा मन्त्रियों के साथ "सम्राटत्व" का नाटक कर रहे थे। समाधि-मन्दिर की गगनविचुम्बित-चूड़ा अतीत का शोक-गीत न जाने कब तक गाती रही।

सोमरस, गौड़ी, माध्वी आदि की कृपा से पाटलिपुत्र के नागरिकों में कुछ जीवन दिखलायी पड़ता था।

यह उस ऐतिहासिक-युग की घटना है; जब, कवि वेदना के चित्र को अपने हृदय के रक्त से रँग कर आँसुओं से तत्काल धो देते थे।

"निर्माण" और "विनाश" में केवल उच्चारण और लिखावट का अन्तर है, वास्तव में है दोनों एक ही।

पियदर्शी

[श्री गोविन्द वल्लभ पन्त]

[आप हिन्दी के अच्छे लेखक हैं, आपकी कहानियों का बड़ा आदर है। कई मासिक-पत्रिकाओं में आपकी कहानियाँ प्रकाशित होती रहती है। प्रियदर्शी आपकी सुघर रचना है।]

—:o:—

चंद्रगुप्त का पौत्र अशोक बाल्यकाल से ही निर्दय, निर्मम और नृशंस था। मगध के सिंहासन पर बैठ कर उसने अपने राज्य-भर में यह कठोर आज्ञा प्रचलित की कि समस्त बौद्धों के सिर काट लिए जायँ। प्रत्येक नर-मुंड के लिये पुरस्कार की घोषणा

हुई। चंडगिर-नामक एक दुरात्मा इस कार्य के लिये नियुक्त किया गया।

शांति की सुविमल सुर-सरिता में सद्यःस्नात आर्यावर्त्त फिर रुधिरासक्त होने लगा। देश में चारों ओर हाहाकार मच गया। कितने ही घरों में दीपक बुझ गए; कई जनपद उजाड़ हो गए; कई पुर श्मशान बन गए। मुक्त-कुंतला, दीना रमणियों के करुण-क्रंदन से चंडगिरि का हृदय नहीं पसीजा। छोटे-छोटे बालकों के निष्पाप, सरल मुखमंडलों को देखकर वह द्रवित नहीं हुआ।

अशोक की भीषण आज्ञा और पाषाण चंडगिरि की कठोर असि के आगे किसी की न चली। वसुँधरा ने शत-सहस्र मुंडों की माला धारण की। इस भयानक रक्त-पात से भारत-माता थर-थर काँपने लगी, आँखों से छल-छल अश्रु-धारा बहाने लगी।

(२)

मथुरा-पुरी में एक वृद्ध वणिक् रहता था। श्याम-सलिला यमुना के तट पर उसकी गगनचुँबी अट्टालिका थी। अट्टालिका का सौन्दर्य और विस्तार वणिक की अतुल धन-राशि का परिचय देता था। उसके समुद्र नाम का एक पुत्र था; जो वणिज्य-सम्बन्धी कार्य के लिये देशान्तर में था।

जो पुष्प सबसे सुन्दर और सरस होता है, उसी पर मधु-मक्षिका सबसे पहले आक्रमण करती है; जो देश सबसे अधिक धन-धान्य और प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण होता है, उसी पर विदेशी आधिपत्य स्थापित कर उसे पद दलित करते हैं; जो वृक्ष सबसे ऊँचा होता है, उसी पर पहले वज्र गिरता है, सौन्दर्य दुःख का जनक है, लक्ष्मी क्लेशों की जननी है, उत्थान ही पतन का मूल कारण है।

छिपते हुए सूर्य की स्वर्ण-वर्ण आभा से प्रकाशित वणिक् की सुविशाल अट्टालिका पर तस्करों की दृष्टि पड़ी। अट्टालिका के भीतर रहने वाली अवगुंठनवती लक्ष्मी का मुख भी उन्होंने कल्पना और अनुमान के नेत्रों से देख लिया। बस फिर क्या था? एक दिन वे शून्य निर्जन मे एकत्र हुए, और उस वणिक् का सर्वस्व हरण करना निश्चित किया।

अमावश की तामसी रात्रि थी। उस अँधेरी रात्रि के आतंक से चन्द्रमा अकाश में पदार्पण नहीं करता; मनुष्य गृह के द्वार बंद कर लेता है; पशु झाड़ियों और गुफाओं में छिप जाते हैं; पक्षी पेड़ की सर्वोच्च शाखा पर स्थित कीड़ा में विश्राम करते हैं। कहते हैं, वृक्ष भी उस समय अपनी सुगंध को कोरक में बंद करके सो जाते हैं; भ्रांति से अपरिचित तरंगिणी भी भी रुक जाती है। ऐसे भयानक समय में उस दस्यु-दल ने एक हाथ में मशाल और दूसरे हाथ में खड्ग लेकर उस श्रेष्ठी के प्रासाद की ओर प्रस्थान किया।

वृद्ध वणिक् सुख की आशा और प्रतीक्षा करते-करते सो गया था। अचानक मूर्तिमान् दुःख ने उसे पुकारा, उसका द्वार खटखटाया, उसके द्वार की शृंखला झनझनाई।

वृद्ध अर्द्ध-निशा की उस अर्द्ध-निद्रा से चौंककर उठा, और उसने अधखुले गवाक्ष-द्वार से बाहर देखा। दस्युओं का एक दल सिंह-द्वार पर उसके प्रहरियों को विद्युद्वेग से भूमि-शायी कर रहा न। वणिक् ने द्वार बंद कर एक दुःख-भरी चीत्कार छोड़ी। उस चीत्कार से उसकी स्त्री, उसकी पुत्र-वधू और उसका नव-जात पौत्र, तीनों जाग उठे। उस समय दस्यु-दल द्वार तोड़कर भीतर आ गया था।

मनुष्य का हृदय रखकर भो जब दस्युओं को गलित अंग और पलित केशवाले वृद्ध और उसकी वृद्धा गृहिणी की उन आँखों को, जो आलोक के स्थान में अश्रुओं से पूर्ण थीं, देखकर दया न आई तो वे खड्ग, जिनके आँखें न थीं, जो जड़ थे, क्या देखते? किसे देखकर दया आती?

चारों दस्युओं ने खड्ग उठाए—चार खड्गों की 'धार में वृद्ध दंपति और संसार के सुखों का संपूर्ण भोग न किए हुए माता और पुत्र के जीवन न जाने किस दिशा को बह गए।

दस्यु-गण सब रत्नाभरण, मणि-मुक्ता, मुद्रा-सुवर्ण एकत्र करके चले। जाते समय मशालों से उस गृह में आग लगा गए। जिस गृह ने वणिक् कुटुम्ब को जीते-जी स्थान दिया था, उसी

ग्रह ने चिता बनकर अपनी अभ्र-भेदी ज्वालाओं में उन्हें अपनाया। यह स्वामी के ऋण का परिशोध था!

घड़ी भर पहले जहाँ सदन था, वहाँ मसान बन गया! जो संगीत-निमग्न थे, उनकी मृत्यु पर कोई रोनेवाला भी न रहा! मनुष्य जिस जीवन के लिये घोर युद्ध, घोर अत्याचार करता है, जिस देह के स्वास्थ्य और सौंदर्य के लिए अनेक चिंतायें किया करता है, जिस सुख का इतना गर्व करता है, वे कहाँ पर जाकर पर्यवसित हुए! कैसा यह संसार है! कितना यह क्षणिक है!

दो पक्ष बाद की बात है। समुद्र विदेश से लौट रहा था, अपरिमित धनोपार्जन कर नाना प्रकार की कल्पनाओं में निमग्न होता आ रहा था। वह माता-पिता के तीर्थ चरणों के दर्शन की इच्छा लिए, विरह-विकला प्रियतमा के मिलन का सुख लिए, सुन्दर बालक की अस्फुट वाणी और अर्द्ध-विकसित हास्य की स्मृति लिए यव को योजन और पल को प्रहर अनुभव करते हुए आ रहा था। आह! उस समय उससे कौन कहता कि "समुद्र! कहाँ जा रहे हो? तुम्हारा घर इस संसार में कहीं नहीं है। सदन-द्वार के समीप प्रभात-समय काक-पक्षी की ध्वनि को तुम्हारे आगमन की पूर्व-सूचना समझ कर हर्षोत्फुल्ल होनेवाली तुम्हारी माता अब इस पृथ्वी पर तुम्हें खोजने से भी नहीं मिल सकती। जहाँ से तुमने उस दिन विदेश-गमन किया था, शिशु को गोद में लेकर, उस पथ को निमिष-हीन नेत्रों से संध्या के अन्त और रात्रि के प्रारंभ तक देखनेवाली तुम्हारी अर्द्धाङ्गिनी

इस विश्व में कहीं नहीं है। वह सर्वस्व देने पर भी नहीं लौट सकती। लौटो समुद्र, किसी का कहीं घर नहीं हैं, किसी के कोई माता-पिता नहीं हैं, किसी के कोई स्त्री-पुत्र नहीं है; सब मरीचिका है, सब माया है।"

प्रभात का आरंभ था। समुद्र अपने गृह से आधे कोस की दूरी पर सुन्दर रथ में बैठा हुआ आ रहा था। उसके पीछे कई रथों में उसके उपार्जित धन आदि सामग्री थी। क्रमशः समुद्र अपने गृह के निकट पहुँचा। जहाँ उसको सुप्रशस्त अट्टालिका देखने का विश्वास था, वहाँ उसने क्या देखा—एक भस्म-स्तूप!

समुद्र ने चौंककर सारथी से पूछा—"तुम पथ तो नहीं भूले?" सारथी ने चकित होकर उत्तर दिया—"नहीं, स्वामी!"

"फिर—?" समुद्र इसके आगे कुछ न कह सका। उसका मस्तक चकराने लगा; स्थिर आकाश घूमता हुआ देख पड़ा—अविराम-प्रवाहनी यमुना स्थित-सी प्रतीत हुई!

रथ उस भस्म-स्तूप के निकट आ लगा। समुद्र ने देखा, वह वही स्थल था, जहाँ से यमुना-पार के वृक्षों के झुरमुट में छिपे हुए नंद-नंदन के मन्दिर का सर्वोच्च हेम-कलश उसे दिखाई देता था। आज भी वह उसे उसी प्रकार दिखाई दिया। मन्दिर के ऊपर मुक्त आकाश में फहरानेवाली ध्वजा भी उसी रंग-ढंग से फहरा रही थी। मन्दिर के घण्टे का रव भी उसी भक्ति-भरे स्वर में था। यमुना के इस पार उसने देखा। उसके पूज्यपाद पिता की बनवाई

सोपान-श्रेणी वही थी। यह आँखों का भ्रम नहीं था, स्मृति की भूल नहीं थी।

समुद्र का हृदय दूने-चौगुने वेग से स्पंदित होने लगा। वह रथ से विद्युद्वेग से उतरा। रत्नन-खचित मुकुट भूमिशायी हुआ; पाद-त्राण न जाने कहाँ गिर गए; उत्तरीय रथ में उलझकर फट गया; रत्न-हार छिन्न होकर पृथ्वी में बिखर गया।

वह एक विक्षिप्त की भाँति रथ से उतरकर भस्म-स्तूप की ओर दौड़ा। अचानक उसे समीप ही एक परिचिता, प्रतिवेशिनी वृद्धा मिली। वह रिक्त कलश लिए सरोवर को जा रही थी। वृद्धा ने उसे देखते ही दीर्घ श्वास त्यागकर कहा—"हाय! भाग्य-हीन समुद्र!"

समुद्र का मस्तक संकुचित हुआ, होंठ हिले, आँखें विस्फारित हुईं। वृद्धा का हाथ पकड़ कर उसने एक साँस में कहा—"देवी, देवी, तुम यह क्या कहती हो? तुम्हारे शब्दों में अमङ्गल का आभास पाया जाता है। मेरे गृह में कुशल तो है?"

"तुम्हारे गृह के साथ ही कुशल चली गई"—वृद्धा ने दुखी होकर यह कहा। आश्चर्य और दुःख के आवेग में समुद्र ने कहा—"क्या? क्या? हमारी अट्टालिका कहाँ है?"

वृद्धा ने शोक में डूबे हुए स्वर से कहा—"दस्युओं ने जला डाला!"

इस आघात को सहनकर समुद्र ने पूछा—"माता-पिता ?"

वृद्धा ने नीरव रहकर एक श्वास ली; समुद्र का धैर्य जाता रहा। उसने विकल होकर पूछा—"स्त्री-पुत्र ?"

वृद्धा की आँखों से अश्रु गिरने लगे। समुद्र ने कहा—"बताओ, बताओ माँ, तुम चुप क्यों हो ? कहो, कहो, मेरे स्वजन; मेरा सुख-सौभाग्य, मेर स्वर्ग कहाँ गया ?"

वृद्धा ने पहले आकाश और फिर पृथ्वी की ओर संकेत करके कहा—"उसकी इच्छा !"

समुद्र ने विह्वल होकर पूछा—"क्या सब भस्मसात हो गए ?"

वृद्धा—"हाँ, दस्युओं ने तुम्हारी सम्पत्ति लूट ली, तुम्हारा गृह जला डाला, और उस अग्नि में तुम्हारे माता, पिता, स्त्री, पुत्र, सब भस्मीभूत हो गए।"

समुद्र "हाय !" कहकर मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा।

(३)

समुद्र स्वजन और सर्वस्व से हीन होकर संसार के प्रति वीत-राग हुआ। जो कुछ संपत्ति वह अपने साथ लाया था, सो सब उसने दीन-दुखियों को बाँट दी। कौषेय वस्त्र के स्थान में काषाय चीर धारण किया। मस्तक के सुवासित तैल-सिक्त केश-गुच्छ काटकर शिर का मुंडन किया। रत्नाभूषण-विहीन करों में

भग्न मृत्तिका-पात्र लिया। पुष्प की कोमलता में कण्टक की तीक्ष्णता का अनुभव करनेवाले चरण-द्वय उपाहन-हीन किए, और प्रव्रज्या लेकर बुद्ध-धर्म और संघ की शरण ली।

इसके बाद उसने ज्ञानान्वेषण के लिए बौद्ध-श्रमणों का सत्संग किया, बौद्ध-तीर्थों का परिभ्रमण किया। इन्द्रियों का दमन किया, और उनपर विजय पाई। माया के पास को तोड़ और शान्ति पाई। अनेक वर्ष के बाद वह पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर पाटलिपुत्र नगर में आया।

पाटलिपुत्र में उन दिनों राजा अशोक अहिंसाव्रती बौद्धों के निर्दोष रक्त की नदियाँ बहा रहा था। समस्त चैत्य नष्ट कर दिए गए थे; विहारों में आग लगा दी गई थी। समुद्र ने एक भग्न मठ में जाकर निवास किया।

चण्डगिरिको जब यह समाचार ज्ञात हुआ कि पाटलिपुत्रमें एक बौद्ध-भिक्षु आया है, तो उसने उसका सिर काट लाने के लिए एक सशस्त्र सैनिक भेजा।

सैनिक ने जाकर देखा, एक सौम्य-मूर्ति, ज्ञान के दिव्यालोक से जिसका मुख-मंडल ही नहीं, समस्त शरीर भासमान था, एक वट-वृक्ष के नीचे मुद्रासनस्थ है। सैनिक के हाथ से तलवार झनककर गिर पड़ी। वह स्वामी का कार्य भूल गया। उसने कातर भाव से भिक्षु के चरणों को छुआ। भिक्षु ने उसे आशीर्वाद दिया—"धर्म में मति हो। क्या चाहते हो वत्स?"

सैनिक—"भगवान की दया।"

समुद्र—"वह तो प्रत्येक पल्लव से बरस रही है वत्स ! आओ, उसमें स्नान कर पवित्रता और शान्ति प्राप्त करो।"

सैनिक—मुझे क्षमा करो भिक्षु-श्रेष्ठ ! मैं आपका नाश करने आया था। मुझे जीवन दो।''

भिक्षु समुद्रने स्मित आनन से कहा—"तो तुमने मेरी हत्या करने से हाथ क्यों खींच लिया ?"

सैनिक ने दीन होकर कहा—"क्या इस स्थिर, शान्त मूर्ति के ऊपर किसी की तलवार उठ सकती है ? यह गर्दन तलवार के लिये नहीं, भक्ति के पुष्पहार के लिये है। जब संसार का मंगल करनेवाले भिक्षुकी हत्या की जायगी; तो संसार में दुरात्माओं के दण्ड की क्या व्यवस्था होगी ? भगवन्, मैं आपकी दया का भिखारी हूँ ; राजा के दिये हुए दंड को हँसते-हँसते सह लूँगा।"

"यह राजा का दंड कैसा ?"--भिक्षु ने आश्चर्य-मुद्रा से कहा।

सैनिक—"क्या आपको विदित नहीं है ? महाराज अशोक ने समस्त बौद्धों के विनाश की कठोर आज्ञा राज्य-भर में प्रचारित की है। उसी के अनुसार मैं आपका बध करने आया था।"

भिक्षु—"फिर तुमने मेरे बदले अपने स्वामी की आज्ञा का बध क्यों किया ? यह तो स्वामी के प्रति विश्वास-घात है।"

सैनिक—"किन्तु इस लोक के बाद भी एक महालोक है। उसका भी एक स्वामी है। यह उस स्वामी की भक्ति है।"

श्रमण समुद्र ने मुग्ध होकर कहा—"धन्य सैनिक, तुम्हारा ज्ञान धन्य है। आओ, मैं तुम्हें तथागत अमिताभ के प्रेम से परिपूर्ण साम्राज्य का पथ बतलाऊँगा।"

जब चंडगिरि को ज्ञात हुआ कि उसके भेजे हुए सैनिक ने समुद्र से बौद्ध-धर्म की दीक्षा ग्रहण कर ली है, तो वह क्रोध से लाल हो उठा। उसने तत्क्षण चार सैनिकों को आज्ञा दी—"जाओ, शीघ्र उन दोनों राक्षसों के छिन्न मुंड मेरे समीप उपस्थित करो। तुम्हें प्रचुर पुरस्कार दिया जायगा।"

सैनिक नंगी तलवारें चमकाते हुए चले। मठ में पहुंच कर उन्होंने ज्योंही बौद्ध-भिक्षु और उस सैनिक का बध करने के लिये तलवारें उठाईं, परमेश्वर की लीला, उन दोनों के मस्तकों के बदले चारों सैनिकों के मुंड कट कर दूर जा पड़े। बौद्ध-भिक्षु ने यह दुःखद दृश्य देखकर एक चीत्कार छोड़ी। नवीन भिक्षु सैनिक धर्म की शक्ति का प्रत्यक्ष उदाहरण देखकर कुछ विस्मित हुआ, मुसकिराया।

यथासमय चंडगिरि के पास समाचार गया कि बौद्ध-भिक्षु समुद्र ने प्रथम प्रेषित सैनिक की सहायता से चारों सैनिकों को मार डाला है। यह समाचार सुनकर चंडगिरि के क्रोध की सीमा नहीं रही। उसके मुख का वर्ण तप्त लौह के समान लाल हो

उठा। उसकी वाणी काँपने लगी। वह स्वयं पद-दलित सर्प की तरह फुङ्कारते हुए, त्रासितसिंह की भाँति दहाड़ते हुए, तलवार लेकर उन दोनों के बध को चला।

उसने वहाँ जाकर, बिजली के समान अस्थिर होकर, मेघ के समान गरजते हुए कहा—"नराधमो, तुम्हें ज्ञात है ? तुम्हारे इस पाप का क्या दंड है ?"

समुद्र ने शाँत शब्द से कहा—"किस पाप का ?

चंड०—"महाराज अशोक के भेजे हुए इन सैनिकों के प्राण बध का !"

समुद्र—"यह प्राण-बध किसने किया है ?

चंड०—"तुमने !"

समुद्र—"मैंने ?—एक बौद्ध-श्रमण ने ? जिसका मंत्र प्रेम है, जिसका धर्म विश्व-मात्र पर दया है, जिसका मोक्ष अहिंसा है, जिसका स्वर्ग भी अहिंसा ही है, वह प्राणि-बध करेगा ?"

चंड०—"दांभिक श्रमण ! पाखंडी भिक्षु ! आर्यावर्त में नास्तिकता फैलाने वालो ! मैं तुम्हें खूब जानता हूँ। तुमने इनका बध नहीं किया, तो क्या ये सैनिक स्वयं ही कटकर गिर गए ?"

समुद्र—"हाँ, स्वयं ही कटकर गिर गए। श्रमण हिंसा नहीं करता; न वह बोधिसत्त्व की आज्ञा के अनुसार असत्य ही बोलता है।"

चंड०—"सैनिक तुम्हारा बध करने आए, और स्वयं उनका ही बध हो गया! तलवार गर्दन काटने चली, और स्वयं दो-टुकड़े होकर भूमि पर गिर पड़ी! क्या इससे अधिक अतिशयोक्ति, अधिक असत्य, इस पृथ्वी पर कोई दूसरी बात हो सकती है?"

"यदि आपको इसका विश्वास नहीं है, तो लीजिए, मैं गर्दन नीची करता हूँ, आप तलवार ऊँची करें"—यह कहकर समुद्र ने अपनी गर्दन झुकाई।

चंडगिरि ने तलवार उठाकर कहा—"हाँ, यह ठीक है।"

अचानक वह रुक गया; श्रमण के कथन की सत्यता के विचार से वह भयभीत हो गया। उसने सोचा—"यदि भिक्षु की बात सच हुई तो, मेरा मुंड पृथ्वी पर होगा। तब सत्यासत्य का विचार करने वाला ही कहाँ रहेगा? दूसरे, मेरी नव-विवाहिता पत्नी विधवा हो जायगी।"

प्राणों का मोह सबसे बड़ा है। धन के लिए मनुष्य धर्म की बलि दे देता है। भोग-विलास के लिये धन को तुच्छ समझता है। किन्तु निखिल विलास-पूर्ण इन्द्र की अमरावती के लिए भी वह प्राणों को निछावर नहीं कर सकता।

चंडगिरि ने तलवार नीची कर कुछ देर सोचा। एकाएक उसने कहा—"इस तरह नहीं, दूसरी तरह मैं तुम्हारे सत्य की

परीक्षा करता हूँ। तुम अपना दाहना हाथ शिला-खंड पर रक्खो मैं इस पर आघात करता हूँ।"

भिक्षु ने अपना हाथ शिला-खंड पर रक्खा; चंडगिरि ने उस पर तलवार चलाई। भिक्षु का हाथ वायु-निर्मित हाथ की तरह अक्षत रहा। उसके स्थान में मय तलवार के घातक चंडगिरि की दाहिनी भुजा दूर जा गिरी। आहत और भय-भीत चंडगिरि विकट चीत्कार करता हुआ, अपने दुर्दिन और दुर्भाग्य को कोसता हुआ, शोणिताक्त हाथ को लेकर नगर की ओर दौड़ा

(४)

महाराजा अशोक के समीप जाकर उसने कहा—"भगवन्, मेरे ऊपर दया करिए, अपना यह कठोर कार्य-भार मुझसे लेकर किसी और के सिर पर रखिए।"

अशोक ने अचकित होकर कहा—"क्यों वीर! तुम्हारी इस विह्वलता का क्या कारण है? हैं, तुम्हारा यह हाथ किसने काट डाला?"

चंडगिर ने कहा—"यह मेरे पाप का प्रायश्चित है। इस हाथ से मैंने अपने जन्म देने वाले माता-पिता का बध किया, अनेक निरपराध बौद्धों का बध किया, अनेक माता-पिताओं को पुत्र-हीन और पुत्रों को अनाथ किया था, यह उसी का दण्ड

अशोक ने अधिक आश्चर्य-युक्त होकर कहा—"इसे कौन दंड कहता है ? किसने तुम्हें यह दण्ड दिया ?"

चंड०—"उसने, जो वास्तविक दंड-दाता है।"

अशोक—"वह कौन है ? किसने सुप्त सिंह को छोड़ा है—मृत्यु को जगाया है ? क्या वह अशोक के आतंक से परिचित नहीं है ? बताओ, वह कौन है ?"

चंड०—"ब्राह्मण और बौद्ध, दोनों का पिता, परमेश्वर। मैं आज से बौद्धों का वध नहीं करूँगा। प्रत्यक्ष परमेश्वर ने प्रकट होकर मुझे चेतावनी दी है।"

अशोक ने शासक के स्वर में कहा—"हैं, तुम क्या कहते हो ? संसार-पृष्ठ से इन नास्तिक बौद्धों को नाम-शेष करना प्रत्येक का धर्म है। उपवन की उन्नति के लिये काँटों को एकत्र कर चतुर उद्यान-रक्षक उनमें अग्नि स्थापित करता है, जिसमें वे काँटे बढ़कर पुष्प-लताओं के जीवन में बाधा न बनें।"

चंड०—"किन्तु कोई भी उद्यान-रक्षक वसंत की कुसुमित लता को काटकर अग्नि को समर्पित नहीं करता। क्या ये बौद्ध संसार के कंटक हैं ? इन्होंने आर्यावर्त का कौन-सा अनिष्ट किया है ?—यही न कि ये सर्वत्र अहिंसा और प्रेम के पवित्र मन्त्र का प्रचार करते फिरते हैं। क्या अहिंसा और प्रेम अधर्म है ? आज तक मैं सोया हुआ था; मेरी दोनों आँखें बन्द थीं। मुझ पर आपका जादू चल गया। आज मैं जागा हूँ; मेरे अंतर

के नेत्र खुल गये हैं। मैं स्पष्ट-रूप से देख रहा हूँ--ब्राह्मण और बौद्ध, दोनों एक ही पिता की संतान हैं। आपको कोई अधिकार नहीं कि आप बौद्धों का रक्त बहावें, उनकी धन-संपत्ति लूट लें, उनके वास-स्थान में आग लगा दें, उनके प्राण-प्रिय दारा, सुत आदि को उनके सम्मुख ही काटकर दो टुकड़े कर दें।"

महाराज अशोक ने क्रोध-कंपित स्वर में कहा—"चंड! तुझे आज क्या हो गया? क्या तुझे ज्ञात नहीं है कि तू बौद्धों के परम शत्रु अशोक से बातें कर रहा है? क्या तुझे उस अशोक की प्रभुता ज्ञात नहीं है, जो आर्यावर्त्त को बौद्ध-विहीन करने के लिये मगध के सिंहासन पर बैठा है? क्या तू आज पागल हो गया है?"

चंड०—"हाँ, पागल हो गया हूँ। एक बार आपकी राक्षसी आज्ञा का पालन कर पागल हुआ था, आर्यावर्त्त की पवित्र भूमि को निर्दोष बौद्धों के रक्त से रंजित किया था, आर्यावर्त्त के आकाश को आर्त अबलाओं और बालकों के चीत्कार से परि-पूर्ण किया था। आज फिर पागल हो गया हूँ। उस बौद्ध-भिक्षु के स्वर्गीय दया से परिपूर्ण मुख के दर्शन कर पागल हो गया हूँ।"

"किस बौद्ध-भिक्षु की?"—यह अशोक ने तीक्ष्ण स्वर में पूछा।

चंड०—"राज-प्रासाद से चार कोस दूर, उत्तर दिशा की ओर, गंगातट-स्थित एक भग्न विहार को जिन्होंने अपनी पाद-धूलि से पवित्र किया है।"

अशोक—"क्या तूने उसका वध नहीं किया ?"

चंड०—"नहीं, न कर ही सकता हूँ।"

अशोक—"क्यों ?"

चंड०—"भगवान् स्वयं उसके रक्षक हैं।"

अशोक—"एक नास्तिक के भगवान् रक्षक हैं ?"

चंड०—"निस्सन्देह।"

अशोक—"यह दुश्शीलता ! यह उद्दण्डता !"

चंड०—"सत्य उद्दण्डता नहीं है। मैं या आप क्या, संसार की कोई शक्ति उसका बाल भी बाँका नहीं कर सकती।"

अशोक—"शान्त हो।"

चंड०—"सत्य पर परदा डालना पाप है।"

अशोक—"तुझे ज्ञात है, इसका क्या फल होगा ?"

चंड०—"हाँ, मेरा वध। उसके लिये प्रस्तुत हूँ; मुझे बन्दी कीजिए।"

अशोक की आँखें लाल हो गईं; भ्रुकुटि ने बंकिम रूप धारण किया; ओष्ठाधर क्रोध से काँपने लगे। उन्होंने प्रहरी को

आज्ञा दी—"जाओ, चार सैनिकों को बुलाओ, और हमारा घोड़ा तैयार करो।"

सैनिकों के आने पर अशोक ने उन्हें आज्ञा दी—"इसको बन्दी करो। आज के तीसरे दिन गंगातीरस्थ सुविस्तृत मैदान में पाटलिपुत्र के समस्त नर-नारी एकत्र किए जायँ। वहीं इस राज-द्रोही को प्राण-दण्ड और समस्त जनता को शिक्षा मिलेगी।

"जो आज्ञा"—कह कर सैनिकों ने अभिवादन किया और चले गए।

अशोक ने पुकारा—"प्रहरी, अश्व उपस्थित है?"

प्रहरी ने विनम्र होकर कहा—"देव के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा है।"

अशोक ने तलवार हाथ में ली, और वह घोड़े पर चढ़ कर स्वयं बौद्ध-भिक्षु समुद्र का वध करने को चले।

भिक्षु समुद्र उसी वट-वृक्ष के नीचे ध्यानावस्थित होकर बैठे थे। नवीन सन्यासी वह सैनिक समीप के किसी ग्राम में भिक्षा के लिये गया हुआ था। भिक्षु को देखते ही अशोक का रक्त उबलने लगा। घोड़े को एक बकुल के वृक्ष से बाँध कर अशोक तलवार झनकारते हुए आगे बढ़े। भिक्षु की उस ओर पीठ थी।

अशोक ने बिना कुछ वाक्य-व्यय किए अपने अंग की समस्त शक्ति भुजा में केन्द्रित कर उस भिक्षु के ऊपर तलवार चलाई।

मगर फल क्या हुआ? भिक्षु की गर्दन छूते ही तलवार कोमल पुष्प की माला बनकर उसके काषाय-शोभित वक्षःस्थल पर झूलने लगी! अशोक ने भिक्षु को देखा। उसकी दृष्टि में आश्चर्य भरा था। भिक्षु ने अशोक को देखा। उसकी दृष्टि में प्रेम था। उस आश्चर्य और प्रेम का सम्मिलन हुआ। उस सम्मिलन से अशोक के हृदय के भीतर एक महाक्राँति पैदा हुई। हिंसा-भाव ने शस्त्र हाथ में लिया। अधर्म को पराजित कर धर्म ने हृदय के आसन पर अधिकार जमाया।

समुद्र ने ध्यान-भंग होने पर देखा, एक सुन्दर-काँति-विशिष्ट, राजकीय परिधान से शोभित, बलवान युवक उसके समीप, एक अपराधी की भाँति, विनत-वदन, बद्ध-कर और कंपित हृदय लिए खड़ा है।

भिक्षु के स्पर्श से जब जड़ अपना स्वभाव भूल गया, तो मनुष्य की उनके दर्शन से क्या दशा हुई, कौन कह सकता है?

भिक्षु ने करुणा-मिश्रित वाणी से कहा—"कौन?"

अशोक—"मगधाधिपति—अशोक।"

भिक्षु—"एक भिक्षु से मगधाधिपति क्या चाहते हैं ?"

अशोक—"एक भिक्षा।"

भिक्षु—"कैसी ?"

अशोक—"मेरे हाथ निरपराध मनुष्यों के रक्त से सने हैं। मेरी आँखों में प्रायश्चित के आँसू दो; जिसमें मैं अपने रक्त-रंजित हाथ उन आँसुओं से धो सकूँ।"

भिक्षु—"जाओ, यही होगा। आज के सप्ताह बाद तुम्हें महास्थविर उपगुप्त के दर्शन होंगे। उनके निकट बौद्ध-धर्म की दीक्षा ग्रहण करना; तुम्हारे सब संतोष दूर होंगे।"

अशोक आनन्द-मग्न होकर भिक्षु के चरणों को छूकर विदा होने लगे।

भिक्षु समुद्र ने बाधा देकर कहा—"और, सुनो, ठहरो। जिस बौद्ध-धर्म का सर्वनाश करने पर तुम कटि-बद्ध हुए थे, अब, उसकी उन्नति ही तुम्हारे जीवन की सर्वोच्च साधना होगी। यह मेरा आशीर्वाद है। आज से तुम्हारा नाम 'प्रियदर्शी' हुआ।"

अशोक ने भिक्षु के चरणों पर अपना मस्तक रख दिया। भिक्षु ने स्नेह-पुलकित हृदय से उनके मुकुट-मंडित मस्तक में अपने हस्त-द्वय स्थापित किए।

भारत, चीन, जापान, तिब्बत, ब्रह्मा, सिंहल, जावा, सुमात्रा, फ़ारस, रोम, यूनान, मिश्र, अरब आदि के लोगों ने एक भाषा और एक स्वर में उच्चारण किया—"नमो बुद्धाय !"

उस ध्वनि ने मर्त्य-लोक, सुर-लोक और नाग-लोक, तीनों को प्रकंपित कर दिया !

युगुल कुमार

[ले०—श्री आत्माराम देवकर]

[आप सुन्दर अलंकृत भाषा लिखने में विशेष ख्याति पा चुके हैं। आपकी कहानियाँ कई लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यिक पत्रिकाओं में देखने में आई हैं।

प्रस्तुत कहानी से आपको विशेष कला और उनके आदर्श भावों का परिचय स्वयं मिल जायगा।]

—:o:—

पुण्यसलिला अत:धवला कांतिविमला भगवती भागीरथी के किनारे दो वल्कलवस्त्रधारी सप्तवर्षीय बालक खेल रहे थे। विशाल नेत्र, आकर्णविस्तृत भृकुटियाँ एवं आजानु बाहु-द्वय उनके वीरत्व के परिचायक थे। पुष्पगुच्छकयुक्त काकपक्ष सिर

पर सुशोभित थे। चितवन चंचलताहीन, पर बड़ी ही मर्मस्पर्शिनी थी। मुख पर सौम्यता एवं सरलता का अखंड राज्य था। सांसारिकता के दूषित भाव उस पर नहीं अङ्कित हो पाए थे। ओठों पर हास्य की हलकी रेखा खिंची हुई थी तथा दशनपंक्ति से चंद्रकिरण की-सी तापनाशिनी प्रभा प्रस्फुटित हो रही थी। जो देखते थे, वे उन धनुर्बाणधारी युगुल बालकों पर मानों न्योछावर हो जाते थे। वन के पशुपक्षी भी उनके देखने को इच्छुक थे और समस्त पार्थिव चिन्ताओं को भुला चंद्र-चकोर की नाईं उनकी रूप-सुधा का पान करने लगते थे। नहीं जानते, उस रूप में अमृत था या हलाहल; पर कोई आकर्षण अवश्य था।

(२)

वसन्त का सुप्रभात था। भगवती जाह्नवी तनया के उभय-कूलस्थ हरित-श्यामवर्ण दूर्वादल नेत्ररंजक सुकोमल चादर की नाईं बिछा हुआ था। जल-विहंग आ-आकर उस पर सुख से बैठते तथा स्वस्थ हो जाने पर पुनः कलरवयुक्त अविराम नृत्य में सम्मिलित हो जाते थे। शीतल जल के थपेड़े आ-आकर उनके चरणों को चूम लेते थे और वे हर्षोत्फुल्ल मन से कृतज्ञतापूर्ण अज्ञात शब्दों में मानों उन्हें शुभाशीर्वाद देते थे। चतुर्दिकस्थित वृक्षावलियाँ प्रतिबिम्बित और तरंगित होती थीं तथा भगवतीजी मानों सुन्दर-मनोहर हरितवर्ण साड़ी पहन अपने सुविशाल वक्ष

के भीतर से सलज्जा नवोढ़ा वधू की नाईं झाँकने लगती थीं! वृक्षों पर बैठे हुए पक्षी उनके लिए मंगलगीत गाते थे और सुदूर स्थित जलप्रपात आनन्दोन्मत्त हो मानो स्वर्गीय भेरी बजाते थे। मयूरगण उसे वास्तविक मेघ-गर्जन समझ मत्त हो नाचने लगते थे और पपीहे पी-पी की रट लगा देते थे। यह बेचारे अवैतनिक बन्दीजन भगवतीजी के वंश-गुण-गान में इस प्रकार तन्मय रहते थे कि संसार में होनेवाले अत्याचारों की उन्हें तनिक भी सुध न थी। शीतल-मन्द वायु के झकोरे उन्हें विश्राम के लिए विवश करते थे, किन्तु जीवन का एकमात्र व्रत, महालक्ष्य एवं प्रण उन्हें कर्तव्य से विचलित न होने देता था। कीरगण एक बार सुपक्व-स्वादिष्ट फलों से लदे हुए वृक्षों की ओर देखते, फिर प्रकृति की उस सुशृङ्खलित-सुमार्जित अभिनव प्रेम-क्रीड़ा पर दृष्टि डाल हाथ मलने लगते थे। न तो फल छोड़े जाते थे, न वह स्वर्गीय आनन्द ही।

मकरन्दविलसित सुगन्धित पुष्पराज उनकी ओर देखकर हँस देते थे, और भ्रमर चुटकियाँ लेते थे। उसी समय दो स्वर्ण के-से उज्ज्वल सुन्दर एवं कांतिवान् मृगों को दौड़ाते हुए युगुल कुमार वहाँ आए और एक कर्णधार-हीन क्षुद्र नौका की ओर देख उल्लसित स्वर से बोले—"मल्लाह!"

वायुदूत ने प्रतिध्वनित के साथ मिलकर कहा—"मल्लाह!" किन्तु वहाँ कोई नहीं था।

(३)

युगुल कुमार ने अग्निवर्षक सरोष नेत्रों से ऊपर की ओर देखा। गूलर के पेड़ पर पर एक दीर्घकाय भयानक बन्दर बैठा हुआ था, उसने गूलरों को चबाते ही चबाते दोनों को दाँत दिखा कर चिढ़ा दिया। यह देख बालकों का क्रोध भभक उठा। एक ने धनुष पर बाण चढ़ा, उसे उस विकट बन्दर पर छोड़ देना चाहा। इतने में दूसरे छोटे बालक ने मुसकिराकर कहा—"यह क्या करते हो लव! बदला लेना क्षत्रियों का काम है। ब्राह्मणों को तो सर्वदा क्षमा ही करना चाहिए। क्या गुरुजी के उन वाक्यों को भूल गए?"

निशाना ठीक बैठा। लव ने झुँझलाकर धनुष एक ओर फेंक दिया और और रूठकर अलग जा खड़े हुए। कुश ने फिर ललकारकर कहा—"तुम दुःखिनी माता के दुःख को बढ़ानेवाले कुल कलङ्क हो। गूँगे पशुओं को मारकर क्या करोगे? मारना ही है; तो शेर को मारो, शृगाल के मारने से क्या लाभ होगा?"

शाखा पर बैठे हुए वीर बन्दर ने वज्रवत् घोर निर्घोष किया और चमक कर निकट आ गया। दोनों बालक क्षण-भर के लिए विस्मित हुए, किन्तु शीघ्र ही सम्हलकर सामना करने के लिए खड़े हो गए। बन्दर ने जवाकुसुमवत् लाल-नेत्र दिखला दाँत पीसते हुए कहा—"तुम दोनों अभी-अभी क्या कह रहे थे?"

कुश सिकुड़ गए, किन्तु लव ने लपककर कहा—"कह रहे

थे तुम्हारे विषय में, और क्या कहेंगे? तुमने हमारा अपमान किया है, इसका भरपूर बदला लेकर ही रहेंगे।" बन्दर हँसने लगा। उसने कहा—"पहचानते हो, मैं कौन हूँ?"

लव—कोई भी हो, बन्दर हो। हम और अधिक नहीं जानना चाहते।

बन्दर बिगड़ पड़ा। उसने कहा—"तुम दुधमुहे बालक क्या हमारी बराबरी करोगे, एक-एक तमाचा मारकर गिरा दूँगा।"

सुनते ही लव का चेहरा तमतमा उठा। कुश भी मारे क्रोध के काँपने लगे। ललाट पर स्वेद-बिंदु झलक आए। क्रोध-कंपित स्वर से बोले—"गुरुजी की आज्ञा होती, तो अभी तुम्हें इसका मजा देते।" बानर हठ पकड़ गया। बोला। "यही है तो आओ, होड़ लगा लो। तुम अभी मल्लाह को पुकार रहे थे न?" लव ने उत्तर दिया—"हाँ।"

बन्दर—किसलिए?

लव—उस पार जाने के लिए।

बन्दर—बस, इसी बल के भरोसे धनुष-बाण धारण किए हुए हो? इन "धनुहियों" को तोड़ डालो और मेरा पुरुषार्थ देखो। मैं बिना नौका के अभी एक छलाँग में उस पार जा सकता हूँ।"

बालक खिलखिला कर हँस पड़े। उन्हें वानर का वाक्य एक मिथ्यावादी अभिमानी मनुष्य के प्रलाप के समान बोध हुआ। क्षण-भर वे दोनों उसके मुख की ओर देखते रहे। फिर कुश ने कहा—"अच्छा तो जाओ बच्चा, कूदो नदी में और बह जाओ।"

वानर ने अट्टहास किया। वह "जय कौशलाधीश की" कह कर एक ही छलाँग में नदी के उस पार हो रहा।

बालक चकित-विस्मित दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे। लज्जा, क्षोभ और ग्लानि के कारण उनके सिर झुक गए। फिर वे उस विजयी वानर की ओर देखने का साहस न कर सके और धीरे से खिसक गए।

(४)

महर्षि वाल्मीकि के पवित्र शाँति-कुटीर में सती-शिरोमणि जगज्जननी जनक-नन्दिनी अपने निष्ठुर और निर्मम पति कौशलेंद्र रामचन्द्र जी के चरणों में ध्यान लगाए बैठी थीं। एक छोटा-सा सुन्दर मृगशावक उनकी ओर मुँह उठाए खड़ा था और वह मानों किसी अज्ञात मूक भाषा में अपने मन की व्यथा उसे सुना रही थीं! उनके उस असीम दुःख, निदारुण अपमान का साथी—सहानुभूति-प्रदर्शक—वहाँ और कौन हो सकता था? उनके मन में नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प उठते थे, वे प्रियतम प्राणाधिक पति के अनुकूल ही थे। प्रतिकूल

भावों को कभी उनके पवित्र, निष्पाप हृदय में स्थान नहीं मिला। वह सदैव अपने ही को अपराधिनी समझती थीं। प्राणेश्वर के विरुद्ध कभी कोई प्रश्न उनके मन में नहीं उठा, न उठ सकता था। भाग्यवती सच्ची भगवती की नाईं मुनिवर के पवित्र स्थान को दिव्य स्वर्गीय प्रकाश से आलोकित करती रहती थीं। उन्हें अब भी यदि कोई आशा थी, तो वह उन्हीं अन्यायी-अत्याचारी पति की थी। उनके सिवा महारानी जनक-तनया ने कभी किसी का ध्यान नहीं किया—किसी की आशा नहीं की। धन्य है!

विषरण-मुख युगुल कुमार आ माता के चरणों में प्रणत हुए। माता ने वात्सल्य-पूर्ण दृष्टि से उनकी ओर देखा और उनकी मलिन मुद्रा पर करुण हो सशंकित हृदय से सहम कर बोलीं—"तुमको किसने सताया वत्स!" लव ने तड़ित कण्ठ से उत्तर दिया—"एक बन्दर ने मा!"

सीता—बन्दर ने क्या किया लालन?

लव—उसने पहले हमको धमकाया, फिर होड़ लगा एक ही छलाँग में वह गंगा के उस पार पहुँच गया!

सुन कर सीता जी सन्न हो गईं। उन्होंने मुसकिरा कर मुनिवर वाल्मीकि की ओर उँगली से संकेत किया और चुप हो गईं।

(५)

तपोवन में स्फटिक शिला पर बैठे हुए ध्यानावस्थित महर्षि वाल्मीकि के निकट जा लव रोने लगे। कुश ने भी उनका अनुकरण किया। वाल्मीकि ने नेत्र खोल कर देखा, तो दोनों कुमारों को सामने खड़े पाया! करुण दृष्टि से उनकी ओर देखते हुए महर्षि बोले—"इस मानव-अत्याचार-शून्य शाँति-धाम में दुःख-कीट का प्रवेश क्यों?"

रोते-रोते लव ने कहा—"महाराज! हम माता की आज्ञा से आपके निकट आए हैं, हमारे दुःख को दूर करो भगवन्!"

वाल्मीकि—तुम्हारी मूर्खता ही तुम्हारे दुःख का कारण तो नहीं है, स्पष्ट कहो।

लव—हमारी मूर्खता नहीं, कुश की मूर्खता से ऐसा हुआ।

वाल्मीकि—वह क्या?

लव—मैंने अपने एक शत्रु को मारने के लिये बाण चलाना चाहा, किन्तु कुश ने वैसा न करने दिया!

वाल्मीकि—वह शत्रु कौन था?

लव—एक दीर्घाकृति वानर। उसने हमें दाँत दिखाकर चिल्लाया था।

वाल्मीकि—अच्छा तो तुमने क्षत्रियकुमार होकर क्यों इस अपमान को चुपचाप सह लिया?

लव—महाराज! कहा तो कि कुश ने रोक दिया।

वाल्मीकि ने भर्त्सना करते हुए कहा कि—"तुमने बदला क्यों न लेने दिया ?"

कुश—महाराज की आज्ञा से। आप ही ने तो कहा था विभो, कि प्रतिहिंसा का विचार घोर पाप है। क्षमा ही ब्राह्मण का भूषण है।

वाल्मीकि—किन्तु तुम ब्राह्मण नहीं क्षत्रिय हो।

सुनकर दोनों एक दूसरे की ओर देखने लगे। लव ने खिसियाकर कहा—तब महाभाग ! आपने यह बात अभी तक क्यों छिपा रक्खी थी ?

वाल्मीकि—उसका समय नहीं आआ था वत्स ! पर अब तैयार रहो। धनुषबाण ले माथा बाँध उद्यत हो जाओ। अब तुम्हें शीघ्र ही अपने शत्रुओं का सामना करना पड़ेगा, तभी तुम वानर के इस अपमान का बदला ले सकोगे। और ठहरो—देखो, वह दूर पर्वत पर क्या दिख रहा है ?

युगुल कुमार देखने लगे। सहसा कुश चिल्ला उठे—"भयानक बन्दर की मुखाकृति।"

उसी समय वज्रपात की नाईं एक भयङ्कर शब्दघात हुआ, जिससे समस्थ वनस्थली काँप उठी। किन्तु कुटीर अब भी शान्तिपूर्ण था। वनदेवियों ने आ उसे अतुलित शीतल जल से सींच दिया था !

—:o:—

स्नेह की गंगा

[ले०—श्री विद्या भास्कर शुक्ल]

आप एक प्रसिद्ध साहित्य सेवी हैं, आपने कई पुस्तकों की रचना की है। ऐतिहासिक कहानियाँ लिखने में आप से विशेष सफलता मिली है।

आपकी भाषा में ओज तथा लालित्य होता है।

—:o:—

स्वाधीनता का नशा आँखो में भर कर प्रताप ने सैनिकों को आदेश दिया—नगर को उजाड़ दो। शस्य-श्यामला भूमि को विध्वंस कर दो। प्रासादों को ढहा कर खंडहर बना दो और

नगर-निवासियों से कहो कि वे अपने हृदय से मोह और ममता को निकाल कर मेरे पार्वतीय प्रदेश में चलकर आश्रय लें !

आज्ञा में बल था, आदेश में शक्ति थी। राज्य-सम्पन्न न होने पर भी मुख पर वह साहस और आँखों में वह तेज था जिसे देखकर लोग यह सहज ही जान लेते थे कि मेवाड़ के समस्त बलिदानों का पुण्य आज इन्हीं आँखों में बस रहा है। किसी ने सिर तक न उठाया। सारा मेवाड़ उजड़ गया। कुछ देर पहले जो स्थान संगीत, आमोद, वाद्य यंत्रों की मनोहारी ध्वनि और जन कोलाहल के द्वारा जीवन-संसार सा प्रतीत होता था वही निष्प्रभ नीरव और नितान्त दयनीय हो गया। जहाँ के भूमि खंड सुन्दर श्यामल शस्यों से सुरंजित दिखाई देते थे, वहाँ अब बनलताओं और लम्बे-लम्बे तृणों ने अपना अधिकार जमा लिया। जिन राज मार्गों पर निरन्तर गर्वित मनुष्यों की टोलीं चला करती थी, वे जङ्गल की काँटेदार लताओं से घिर गये। बड़े-बड़े प्रासाद गिर कर अपशकुनकारी पक्षियों के निवास बन गये। जिस ओर देखिये उसी ओर अन्धकार। पर क्या इस अन्धकार में भी मेवाड़ की स्वाधीनता हँस खेल नहीं रही थी।

प्रताप मेवाड़ को उजाड़ कर उसके सूने प्रान्त में प्रतिदिन घूमा करते। चित्तौड़ के टूटे हुये प्रासादों के पास जाकर उनसे

पूछा करते—राजपूतों के प्यारे महल ! बताओ तुम्हारी मिट्टी स्वतंत्र तो है ! इस पर किसी ने हाथ तो नहीं लगाया है ! तुम उजड़े रहो, मिटे रहो, बर्बाद होकर रहो, पर रहो स्वाधीन होकर ! प्रताप तुम्हारे इस स्वरूप को भी अपने सर आँखों पर चढ़ाता है।

एक दिन इसी विजन प्रान्त में घूमते हुये प्रताप ने अपने सर्दारों से कहा—मेरे प्यारे सर्दारो ! तुम देख रहे हो कि इस समय सारा भारत अकबर के चरणों पर लोट रहा है। अकबर ने अपने मायावी सिकंजों को चारों ओर फैलाकर तमाम भारत को उसमें फाँस सा लिया है। बड़े-बड़े क्षत्रिय राजपूत अपनी मान-मर्यादा को ठुकरा कर उसके हाथों के खिलौने बन रहे हैं। मैं जिस ओर अपनी दृष्टि डालता हूँ उसी ओर मुझे अकबर गुप्त रूप से लूटते खसोटते हुए दृष्टि-गोचर होता है। पर क्या वह मेरे प्यारे मेवाड़ को लूट सकेगा ? मेरे चित्तौड़ को बर्बाद कर उस पर अपना राजकीय अधिकार जमा सकेगा ? नहीं, हर-गिज नहीं ! मैं कायर नहीं, योद्धा हूं। मेरी रगों में राजपूती रक्त दौड़ रहा है। मैं मर जाऊँगा, टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दिया जाऊँगा, पर मान की तरह मान न बेचूँगा। प्यारे चित्तौड़ की पवित्र भूमि को किसी विदेशी के पैरों से कलंकित न होने दूँगा ! प्यारे सर्दारो ! तुम उन राजपूतों से जो अकबर के विलास-भवन में बैठ कर उसकी चापलूसी कर रहे हैं, उनसे अपना सम्बन्ध तोड़ लो। उन्हें अपनी दृष्टि में उसी भाँति अपवित्र समझो जिस

तरह एक गिरे हुए मनुष्य को समझते हो। वे कायर हैं, तुम वीर हो। वे विलासी हैं, तुम फकीर हो! वे स्वार्थी हैं तुम त्यागी हो! वे चित्तौड़ के भक्षक हैं, तुम उसके रक्षक हो। तुम्हारा उनका सम्बन्ध कैसा! मेरे लिये तो मेरा भाई शक्ति भी अपवित्र है, कायर है। मैं उसे हाथ से छूना तक पाप समझता हूँ। उसने अकबर की गुलामी को स्वीकार कर अपनी स्वर्ग सी पवित्र राजपूती को नष्ट कर दिया है।

प्रताप के इस आदेश का सैनिकों ने स्वागत किया। दूसरे दिन ज्यों ही सूर्य की किरणों ने अपनी मनोहर मुसुकुराहट का प्रकाश संसार के ऊपर फेंका त्योंही कमलमीर के स्त्री पुरुषों, बूढ़ों और बच्चों ने गम्भीर स्वर में प्रतिज्ञा की कि अकबर के हाथों में राजपूती गौरव बेचने वाले कायर क्षत्रियों के साथ किसी प्रकार का प्रेम सम्बन्ध न रखेंगे।

(२)

वह अकबर के हाथों का खिलौना था। अकबर अपनी चुहुलबाजी में मस्त होकर उसकी कुञ्जी ऐंठ देता था। वह उछल कर, हँस कर और ताली बजा-बजा कर कहने लगता—मेरे प्यारे शाह! प्रताप का उठा हुआ मस्तक धूल में मत मिलाओ। सारे मेवाड़ का विध्वंस कर उसे अपने इन मुबारक क़दमों के नीचे लुटाओ। अकबर उस खिलौने की इस चुलबुलाहट से मुसुकुरा देता। वह मन ही मन सोचने लगता! कितना नादान,

कितना भोला और कितना अज्ञानी है! जिसकी गोद में पल कर बड़ा हुआ उसी को बर्बाद करने की मुझे सलाह दे रहा है। मुझे उकसा रहा है। अकबर की इस रहस्यमयी मुसुकुराहट का अर्थ वह खिलौना न लगा कर उछल पड़ता। सोचता—शाह मेरे इन विचारों का स्वागत कर रहे हैं।

उनका नाम था मान। वह अकबर का राज था। अकबर की आज्ञा मान शोलापुर पर विजय प्राप्त करने के लिये गया था। शोलापुर पर विजय प्राप्त कर हृदय में असीम प्रसन्नता के भरे हुए भावों के साथ वह दिल्ली की ओर लौट रहा था। मार्ग में कमलमीर में उतर कर उसने प्रताप का आतिथ्य स्वीकार करना चाहा। प्रताप ने उसकी सेवा तथा उसके आदर-सत्कार का भार अपने लड़के अमरसिंह को सौंपा। अमरसिंह ने मान की सेवा सत्कार में कुछ उठा न रक्खा। पर जब भोजन का समय आया तो अपने को अकेले पाकर मान अमर से पूछने लगा—"अमर! राणा कहाँ हैं? उन्हें बुलाओ। वे मेरे साथ भोजन करने के लिये क्यों नहीं आये?"

"उनके सिर में दर्द है", अमर ने उत्तर दिया।

मानसिंह चौके से उठ कर खड़ा हो गया। उसने क्रोध के स्वर में कहा—मैं जानता हूँ अमर! राणा के शिर में दर्द क्यों हो रहा है। इस दर्द का उपाय शीघ्र ही यह मान करेगा। मान की बात समाप्त भी न होने पाई थी कि प्रताप बाहर निकल

आये। उन्होंने आँखों में स्वाभिमान भरकर उसी स्वर में उत्तर दिया—हाँ, हाँ, जा कुलाँगार! साथ में अपने फूफा अकबर को भी लेते आना।

मान चला गया प्रताप ने उस भूमि को जहाँ मान बैठा था गंगाजी के पवित्र पानी से धुलवा कर सन्तोष की साँस ली।

(३)

दिल्ली का शाही दर्बार लगा था अकबर उदास बैठा था। वह रह-रह कर सोच रहा था, शोलापुर का अभी कुछ समाचार नहीं मिला, राजा मान अभी संग्राम-स्थल से लौट कर नहीं आये। इसी समय दरबान ने आकर निवेदन किया—जहाँपनाह, राजा साहब शोलापुर पर फ़तहयाबी हासिल करके लौट रहे हैं। अकबर का चेहरा खिल उठा। उसके सूखे हुए अधरों पर मुसकुराहट की लाली दौड़ पड़ी। वह उत्सुकता पूर्वक मान के आने की प्रतीक्षा करने लगा।

मान ने दर्बार में पहुँच कर शाह को मस्तक झुकाया। शाह ने उसके चेहरे पर दृष्टि डाल कर आश्चर्य से कहा—राजा साहब! मैंने सुना है कि आपने शोलापुर युद्ध में बड़ी बहादुरी दिखा कर विजय प्राप्त की है, पर आपके चेहरे पर उस विजय की प्रसन्नता न होकर यह उदासी क्यों?

मान की आँखों में आँसू भर आये। उसने अपनी आँखों में सारी राजपूती शान डुबो कर उत्तर दिया—जहाँपनाह! शोलापुर विजय की जितनी खुशी मेरे हृदय में है, उससे बढ़कर दुख मेवाड़ के पागलसिंह प्रताप को देखकर है। जब तक उसका सर्वनाश न हो जायगा, जब तक मेवाड़ की भूमि श्मशान की भाँति उजाड़ न हो जायगी, तब तक न तो मान के चेहरे पर प्रसन्नता आयेगी और न उसकी आँखों के ये चमकते हुए जल-कण ही सूख सकेंगे।

मान ने अपने अपमान की बात अकबर के कानों में डाल दी। अकबर ने क्रोध से पागल होकर उत्तर दिया—राजा साहब! धैर्य धरो! प्रताप को मालूम नहीं कि अकबर मान को किन आँखों से देखता है। मान के लिये अकबर के हृदय में कितना स्नेह और सम्मान भरा हुआ है। राजा साहब! प्रताप ने आपका अपमान नहीं किया है, उसने दिल्ली के शाही दर्बार का अपमान किया है। उसने अपनी इस तुनुकमिजाजी से दिल्ली के शाहन्शाह अकबर की मान-मर्यादा को धूल में मिलाने का साहस किया है। मैं आपको आज्ञा देता हूँ राजा साहब, आप सलीम के अधिनायकत्व में मुग़लों की एक विशाल सेना लेकर मेवाड़ पर चढ़ाई करें और मेवाड़ की उस भूमि को खोदकर तहस-नहस कर दें! पर इस आक्रमण के पहिले मैं यह अच्छा समझता हूँ कि मेवाड़ के पार्वतीय प्रदेश का रहस्य शक्तसिंह से जान लिया जाय! इसमें सन्देह नहीं कि वह भोला भाला नव-

युवक, मेरी बातों से प्रसन्न होकर प्रताप की सेना का सारा रहस्य मुझे बता देगा।

मान भला उसे कब न मानता। अकबर ने दरबान से शक्त को दर्बार में बुला कर कहा—शक्त! जानते हो मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ—तुम्हारे लिये किस क़दर मुसीबतों के उठाने के लिये तैयार रहता हूँ, तो क्या अवसर पड़ने पर तुम भी मेरी ही भाँति अपने कर्त्तव्य को पूरा कर सकोगे?

क्यों नहीं—शक्त ने उत्तर दिया—जहाँपनाह! राजपूत किसी को एक बार वचन देकर फिर उसके साथ विश्वासघात करना नहीं जानते! उनका सर, उसके लिये, सदैव उनके हथेली पर तैयार रहता है। फिर उन्हीं राजपूतों के वंश में उत्पन्न हो कर, यह शक्त क्यों न अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकेगा!

अच्छा यदि यह बात है—अकबर ने कहा—तो प्यारे शक्त! आज सचमुच वह समय आ गया है, आज देखना है कि तुम मेरे हृदय में पले हुये प्यार का मूल्य, कहाँ तक अपने कर्त्तव्य से चुकाते हो? तुम जानते हो कि मेवाड़ का पार्वतीय पथ अत्यन्त दुस्तर और दुर्गम है। प्रताप ने, बड़े चतुराई से, इन्हीं पार्वतीय प्रदेशों में अपनी सैनिक-शक्ति का संगठन कर रक्खा है। तुम प्रताप के भाई हो, उसके साथ रहे हो, मेवाड़ के पार्वतीय प्रदेशों से परिचित हो, अतः कर्त्तव्य चुकाने के नाते प्रताप

की सैनिक शक्ति का सारा रहस्य बता कर अपने सम्राट के दग्ध हृदय को शीतल करो।

युवक चुप हो गया। उसकी राजपूती आत्मा काँप उठी। उसने अपने मन में कहा—नहीं, यह कभी नहीं हो सकता। भाई! मेरा भाई प्रताप!! चित्तौड़! मेरा प्यारा चित्तौड़!! ओह! मैं क्या सुन रहा हूँ। हरगिज नहीं, सम्राट, तुम एक सच्चे राजपूत से इसकी आशा न करो! राजपूत अपने भाई से दुश्मन बन कर भी अपने देश की गर्दन पर छुरी नहीं चलाते। शक्त को चुप देख कर अकबर ने कहा—क्यों! शक्त चुप क्यों हो, बोलो।

शक्त ने उत्तर दिया—जहाँपनाह मैं अवश्य आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। आप सेनापति सलीम के साथ मुझे रण-स्थल में भेज दें फिर देखें कि सच्चे राजपूत किस भाँति अपने वचन का निर्वाह करते हैं!

अकबर प्रसन्न हो उठा। उसने मुग़लों की विशाल वाहिनी, सलीम और मान के हाथों में सौंपकर कहा—जाओ, मेवाड़ अपना सर्वनाश कराने के लिये तुम्हारा आवाहन कर रहा है।

(४)

उदयपुर के पश्चिम में दश योजन विस्तीर्ण एक सम-चतुष्कोण विशाल प्रदेश दिखाई देता था। अकबर के आक्रमण का

समाचार सुनकर वीर केसरी प्रताप ने इसी विशाल मैदान में अपना डेरा डाला। यह स्थान उदयपुर के पार्वतीय प्रदेशों का मध्य बिन्दु सा है। इसे चारों ओर से पर्वत-श्रेणियाँ घेरे हुए हैं। टेढ़ी-मेढ़ी चाल वाली नदियाँ, इसके चारों ओर बह कर इसे अत्यन्त अभेद्य और सुरक्षित बनाये हुए हैं। जिस ओर आँख उठाइये, उसी ओर लम्बा चौड़ा पर्वत अपने मस्तक को ऊपर कर आकाश से बातें करता हुआ नज़र आता है।

इसी पार्वतीय प्रदेश के हल्दी घाटी नामक स्थानों में अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित होकर वीर राजपूत चारों ओर खड़े होगये। महाबली भीलों का दल भी पर्वतों की उच्च श्रेणी पर बैठ, हाथ में धनुष बाण ले दुश्मनों की प्रतीक्षा करने लगा। इसका यह तात्पर्य था कि यदि मैदान में खड़ी हुई राजपूतों की सेना अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार से दुश्मन को क्षत-विक्षत करेंगी, तो दूसरी ओर से भील सर्दार मुगलों पर पत्थरों की वर्षा करके उन्हें विचलित और स्तम्भित सा कर देंगे। प्रताप इस भाँति अपनी सैनिक शक्ति को सङ्गठित कर सलीम के आने की राह देखने लगे।

श्रावण का महीना था। रिमझिम पानी बरस रहा था। हरित तृणों से ढकी हुई पर्वत-मालायें, प्रताप का यश-गीत गा रही थीं। उमड़ कर वेग से बहती हुई नदियाँ अपने 'हरहर' और 'कलकल' के निनाद से खड़े हुये राजपूतों को उत्सर्ग का पाठ सा पढ़ा रही थीं। देश भक्ति की गङ्गा में नहाने वाले प्रताप

स्वाधीनता का प्याला पीकर हाथ में धनुष बाण ले घोड़े पर सवार हो सैनिकों में नवजीवन भर रहे थे। उनका त्यागी स्वरूप, उनकी आँखों में क्रीड़ा करती हुई बलिदान की भावनाएँ देखकर राजपूत और भील सर्दारों के मन में वीरता की एक अनुपम लहर सी दौड़ रही थी। इसी समय सलीम की सेना राजपूतों के सामने जाकर भिड़ गई। भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया। एक ओर से 'हर हर महादेव' और दूसरी ओर 'अल्ला हो अकबर'' के गगन-भेदी नारे लगने लगे। प्राणों की मोह-ममता छोड़ कर राजपूत आगे बढ़ने लगे। प्रताप का अनुपम उत्साह और रण-चातुर्य देखकर राजपूतों की नसों में स्वाधीनता का रक्त सा लहराने लगा। वीर रङ्ग में रंगे हुये प्रताप जिस ओर अपने घोड़े की बाग फेरते उसी ओर मैदान खाली हो जाता, बर्छी और खड्ग के प्रहार से सैकड़ों मुण्ड कट-कट कर पृथ्वी पर नाचने लगते। जिस प्रकार प्रबल सिंह मृग के झुण्ड में घुस कर उसे क्षण-मात्र में विताड़ित कर देता है, उसी प्रकार चित्तौड़ी माता की रक्त को मस्तक पर लगाने वाले प्रतापी प्रताप ने थोड़ी ही देर में मुग़ल सैनिकों को अस्त-व्यस्त कर दिया। मुग़ल सेना में हाहाकार मच गया। लोग इधर-उधर भागने लगे। वीर प्रताप के बर्छे के सामने ठहरने की किसी की हिम्मत न पड़ी।

आँखों का नशा न उतरा। मान का अभिमान कलेजे में नेजे की भाँति चोट कर रहा था। सारी मुग़ल सेना छिन्न-भिन्न

हो गई पर मान सामने न आया। प्रताप चिन्तित हो उठे। उनका स्वाधीनता प्रेमी बर्छा मान का रुधिर पान करने के लिये अधिक बैचैन हो उठा। प्रताप उसकी खोज में अपने बर्छे को प्यास बुझाने के लिये मुग़ल सेना के व्यूह को चीर कर उसके भीतर घुस गये। ओह ? ग़ज़ब की वीरता थी, सहस्रों मुग़लों की तलवारें प्रताप के गर्दन पर गिरने के लिये एक साथ ही आकाश की ओर उठी हुई थीं और उसके उत्तर में प्रताप की केवल अकेली तलवार। पर थोड़ी देर में उस उन्मादिनी तलवार ने ललक कर सहस्त्रों मनुष्यों के हाथों को नीचे गिरा दिया ! इसी समय अकबर का बेटा, सलीम हाथी पर सवार प्रताप के सामने आया। उसे सामने देख कर प्रताप की नसों में दूना रक्त दौड़ने लगा। प्रताप के घोड़े चेतक ने हाथी के मस्तक पर टाप जमा दी। प्रताप ने बर्छा फेंक कर उसके ऊपर प्रहार किया। बर्छा सलीम को न लगा, पर उसका हाथी और फीलवान इस संसार से चल बसे। सलीम को भयानक विपत्ति में पड़ा हुआ देख कर मुग़ल सेना चारों ओर से प्रताप पर टूट पड़ी। हाथी चिंघाड़ कर सलीम को घेरे से ले भागा एक साथ ही सैकड़ों वार होने लगे। प्रताप को मुग़ल सेना के व्यूह को भेद कर बाहर निकल जाना कुछ दुस्तर जान पड़ा।

वह एक दूसरी ओर लड़ रहा था। उसका नाम था झाला-पति माना। उसने देखा मुग़लों के व्यूह में घिरे हुये प्रताप घोर

धीरे भयानक संकट में पड़ रहे हैं। उसने सोचा, प्रताप जीकर मेवाड़ को स्वाधीन करेंगे, चित्तौड़ी माता के पवित्र गौरव की रक्षा करेंगे और मैं कुछ नहीं। अतः मैं इस समय मर कर ही क्यों न अपने कर्त्तव्य को चुकाऊँ ? बस फिर क्या था वह वीर अपनी एक छोटी टुकड़ी के साथ सिंह की भाँति गर्जता, ठनकता दुश्मनों को मूली की भाँति काटता हुआ प्यारे प्रताप के पास जा पहुँचा और उनके सिर पर चमकते हुये राज-छत्र को उतार कर उसे अपने सिर पर रखते हुये बोला—महाराज ! चित्तौड़ की अधिष्ठात्री देवी इस समय मेरा ही बलिदान चाहती हैं। आपको किसी दूसरे दिन के लिये वह सुरक्षित रखना चाहती हैं। अतः अब आप यहाँ से फ़ौरन चले जाँय।

मुग़ल सैनिक अब झालपति को ही प्रताप समझ कर उस पर वार करने लगे। प्रताप को अवसर मिला, वे बाहर निकल गये।

(५)

युद्ध में तितर-बितर होकर एकान्त में वह युवक सोच रहा था—वह वीर है, मैं कायर हूँ। उसका मन गङ्गा-जमुना की भाँति पवित्र है। उसने मातृ-भूमि की स्वाधीनता के लिये अपना सब कुछ तक उत्सर्ग कर दिया है। ओह ! मैंने उसे नहीं पह-चाना वह मेरा भाई प्रताप, देश पर जी जान से मरने वाला प्रताप पवित्रता से भी पवित्र है। शरीर में अनेकों आघातों

के लगने पर भी वह किस भाँति रण-स्थल में अपना जौहर दिखा रहा है। जिस ओर झुकता है उसी ओर मैदान साफ हो जाता है। जिस ओर उसकी भयानक तलवार गिरती है उसी ओर की पृथ्वी दहल जाती है। वह अभी तो अपने प्यारे चेतक पर सवार हो कर इसी ओर गया है। इसके पीछे दो कपट वेषधारी मुग़ल सैनिक भी तो लगे हैं। तो क्या ये कायर स्वाधीनता के उस अमरपुजारी, मेरे भाई प्रताप को मार डालेंगे ? नहीं, शक्त जीता रहे और मेवाड़ के राणा पर कोई हाथ उठाये—चलो इन दोनों को मार कर फिर से देश-भक्ति की गङ्गा में स्नान करें। तभी तो फिर चित्तौड़ का बन सकूँगा। तभी तो मेरे पापों का प्रायश्चित पूरा हो सकेगा।

युवक शक्त उछल कर घोड़े की पीठ पर जा बैठा और घोड़े को एँड़ लगा कर उसी ओर द्रुतगति से चल पड़ा जिस ओर प्रताप जा रहे थे! स्वाधीनता के पथ के उस थके हुए बटोही को लेकर ज्योंही चेटक ने उछल कर नदी पार की, त्योंही पीछे बन्दूक का शब्द हुआ। प्रताप चौंक उठे, इसी समय उनके कानों में यह शब्द पड़ा—हो नील घोड़ारा असवार! प्रताप के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्होंने पीछे फिर कर देखा—शक्त!

छिपी हुई प्रतिहिंसा जाग उठी। प्रताप ने म्यान से तलवार खींच कर कहा—शक्त! सचमुच यह बदला चुकाने का अच्छा अवसर है! मुझे मार कर मुग़ल सम्राट अकबर से पुरस्कार लेने

का अच्छा मौक़ा है। पर अभी प्रताप के हाथों में तलवार है। इस तलवार को हाथ में रहते हुए क्या कोई प्रताप को मार सकेगा ? नहीं, आओ मैं तलवार से तुम्हारा स्वागत करने के लिये तैयार हूँ।

शक्त ने प्रताप के चरणों पर गिर कर इसका उत्तर दिया।

कैसे विश्वास हो भाई शक्त ! प्रताप ने कहा।

शक्त ने अपनी तलवार निकाल कर अपनी गर्दन पर रख ली।

प्रताप का हृदय स्नेह से भर गया। उन्होंने शक्त को उठा कर अपनी छाती से लगा लिया और उसके मस्तक को चूमते हुये कहा—प्यारे भाई दुखी न हो, देश-भक्ति की गंगा सारे पापों को बहाकर दूर कर देती है।

शान्ति का पुजारी

(लेखक श्रीयुत "सन्त" एम० ए०)

" कली "

उन दिनों भारताकाश मेघाच्छन्न था। अशान्ति की काली घटाएँ चारों ओर से घिरी आ रहीं थीं। मुसलमान "ग़ाजियों" की चमचमाती तलवारें जहाँ-तहाँ बिजली की तरह कौंध जाती थीं और कभी-कभी "या मुहम्मद" और "या अली के" नारे बादलों की गर्ज की तरह सुनाई दे जाते थे। मजहब के नाम पर मर मिटने वाले जोशीले मुसलमान "मुहम्मद" साहब के सिद्धान्तों के द्वारा "इस्लाम" धर्म का प्रचार करके "काफिरों" को "राहेरास्त" पर लाकर संसार भर को "बहिश्त" में लेजाने पर तुले हुए थे। उनकी यह "निःस्वार्थ" सेवा अधिकतर तलवार के जोर पर ही होती थी। हिन्दू जाति के भाग्याकाश में निराशा यामिनी का अन्धकार दारुण होता जा रहा था। "सुख" और "स्वराज्य" पूर्वजों की गौरव-पूर्ण सम्पत्ति थी, जो अतीत के गर्भ कोष में सञ्चित थी। "शान्ति" और "प्रेम" के दृश्य संसार के रङ्ग-मञ्च पर अब देखने को नहीं मिलते थे, हाँ शब्द-रूप में कोष में सुरक्षित अवश्य थे। मनुष्य जीते थे किन्तु जीने से बेजार थे, मृत्यु चारों ओर मुँह बाए दौड़ी फिरती थी। देहली में उस समय पठानों का राज्य था और भारत-वर्ष पर दुर्भाग्य का।

हिन्दुओं ने अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता की पुनः प्राप्ति में सर्वस्व होम दिया था। माता के प्यारे लालों ने एक एक अंगुल जमीन बिना अपना रक्त बहाए विदेशियों के हाथों में न जाने दी। फूलों में तुलने वाली, भीरु हृदया, सुकुमार रमणियों ने स्वराज्य प्राप्ति के पवित्र यज्ञ में वह भाग लिया था कि संसार चकित हो देखता रहता गया। किन्तु लगातार ४०० वर्ष तक के भीषण प्रयास का फल फिर भी निराश जनक ही रहा स्वाधीनता देवी हिन्दुओं पर प्रसन्न नहीं हुई। हिदुओं के पवित्र मन्दिर उनके ही सामने ढहा दिये गए, और उनमें प्रतिष्ठित देव मूर्तियों को उनके ही सामने अपमानित किया गया, गङ्गा और यमुना की पवित्र जलधारायें गऊ रक्त से लाल हो उठीं। उनके पवित्र धर्म ग्रन्थों को जलाकर उनकी आग से विलासप्रिय बादशाह जादियों और शाही रण्डियों के नहाने का पानी गरम किया गया। धर्म-प्राण हिन्दू समाज ने इस देव-अपमान को सहने की अपेक्षा अपने प्राण दे देना बहतर समझा और देव प्रतिमाओं की रक्षा में अपने आपको मिटा दिया, किन्तु फिर भी देव अनुकूल नहीं हुए। भक्तों का संहार देखते रहे, किन्तु उनकी आर्त्त पुकार नहीं सुनी। न उनकी रक्षा को आए और न उनको सफलता ही प्रदान की। लगभग ४००वर्ष के वृहत्-महायज्ञ के फल-स्वरूप भी (जिसमें कि वृद्ध भारत ने सर्वस्व खोकर अपने प्राणों तक की आहुत दे दी) देवी स्वतन्त्रता अनुकूल नहीं हुई।

मनोविज्ञान-वेत्ताओं का कहना है कि जब मनुष्य कोई विशेष महत्वपूर्ण कार्य को उठाता है और उसकी सफलता के लिये सर्वस्व लगा कर के भी उसे उस कार्य्य में सिद्धि नहीं प्राप्त होती तो इससे उसको इतना भयङ्कर धक्का लगता है कि उसके जीवन पर ही आ बनती है, उस धक्के को सहन करने की सामर्थ्य उसमें नहीं रहती। यही दशा हिन्दू जाति की हुई; स्वराज्य-प्राप्ति के महायज्ञ में असफल होकर हिन्दुओं ने अपना हिन्दुत्व खो दिया। उन्हें आर्य्य-गौरव, आर्य्य-संस्कृति, आर्य्य-भाषा सब से घृणा हो उठी। स्वतन्त्रता के पुजारियों, तथा धर्म-प्राण 'शान्त' भारतवासियों को निरन्तर कष्ट उठाते देख, तथा रक्त-लोलुप, पापी, विलास-प्रिय विदेशियों का देव-भूमि भारतवर्ष में ताण्डव-नृत्य देख कर उन्हें ईश्वरीय दरबार तथा वहां के "न्याय" पर भी सन्देह हो उठा। प्रतिमाओं का जादू छूट चला और संसार का आकर्षण लुप्त-प्राय हो गया। घोर निराशा की झलक प्रत्येक मनुष्य के चेहरे पर स्पष्ट दिखाई देने लगी। उन्हें संसार में कहीं से भी सान्त्वना की आशा नहीं रही।

हिन्दू और मुसलमानों के बढ़ते हुए वैमनस्य को देख कर कई शान्ति-प्रिय, पवित्र आत्माएँ शान्ति-स्थापना के लिए उद्विग्न हो उठीं, परमात्मा के कई भक्त परमात्मा के नाम पर किये गए अत्याचारों को रोकने के लिए लालयित हो गए, व कई मुसलमान सन्त, मुल्लाओं की बढ़ती हुई कमीनी हरकतों

से बेज़ार होकर उनके विद्रोही हो गए। चारों ओर के बढ़ते हुए हाहाकार से दुखी हो मनुष्य शान्ति देवी की आराधना में लग गए। स्वतन्त्रता खोदी किन्तु "शान्ति" को न खो सके। अशान्त जीवन असह्य हो उठा। प्रत्येक हृदय "शान्ति के पुजारी" की बाट जोहने लगा। चारों ओर से शान्ति की पुकार मच गई।

प्रेम गाथाएँ लिख-लिख कर सूफ़ियों ने मानवी वेदनाओं को व्यक्त किया और "प्रेम की पीर" के सन्देशों के द्वारा उन्होंने अपने सजातीय हिंसक पशुओं में "समवेदना" के भाव जागरित करने का प्रयत्न किया। उन्होंने अन्य धर्माव-लम्बियों के हृदय पर आघात पहुँचाने की नीति को अमानुषी बताते हुए उस पर घृणा प्रकट की, और पारस्परिक "प्रेम" तथा "बन्धुत्व" के पवित्रतम सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। आरती, नमाज़, रोज़ा तथा पूजा को पारस्परिक वैमनस्य का मुख्य कारण समझ कर उन्हें दिखावटी तथा कृत्रिम साबित किया और उनका घोर विरोध किया। उन्होंने क़ुरआन में वर्णित ऐकेश्वर वाद का समर्थन करते हुए भी परमात्मा की "प्रियतम" स्वरूप में आराधना की और उसकी प्यारी तसवीर को हर "शय" में रमा हुआ देखा। उनकी गाथाओं में प्रेम का इतना सुन्दर निदर्शन है कि उसके परमपावन प्रेम-प्रवाह में मनुष्यों की धर्मान्धता, असहिष्णुता, तथा द्वेष बह जाते हैं। और मनुष्य शान्ति की उपासना में लग जाता

है। मनुष्यों के हृद्गत् भाव, जिनकी अनुभूति हिन्दू-मुसलमान दोनों के सामान्य जीवन को एक प्रकार से प्रभावित करती है, और जो प्राणी-मात्र में समान रूप से व्यापक हैं, उनका चित्रण इन्होंने अत्यन्त सुन्दरता के साथ किया है।

इस प्रकार उधर तो मुसलमान सूफ़ियों ने धर्मान्ध मुसलमानों में "प्रेम" का सन्देश पहुँचा कर उनकी हिंसक प्रवृत्ति को शान्त करने का प्रयत्न किया, इधर 'अशान्त' हिन्दू जाति का प्रति दिन की बढ़ती हुई निराशा के कारण जो नास्तिकता की ओर झुकाव होता जा रहा था, उसकी गति को रोक कर महामना कबीर ने हिन्दू धर्म को उबार लिया, उन्होंने तथा उनके अनुयाइयों ने देश की तत्कालीन परिस्थिति से ऊबकर हिन्दू तथा मुसलमानों के पारस्परिक मनोमालिन्य को हटा उन्हें एक सूत्र में बाँधने के लिये हिन्दुओं के अद्वैत-वाद तथा सूफ़ियों के ख़ुदावाद से मिश्रित सिद्धान्तों को उर्दू तथा हिन्दी मिश्रित सीधी से सीधी किन्तु प्रतिभा-पूर्ण गँवारू भाषा की कविता में लिख कर स्थान-स्थान पर प्रचार किया। सूफ़ियों की भाँति इन्होंने भी धर्म के बाह्याडम्बर का विरोध किया। जिस प्रकार उन्होंने हिन्दुओं के अवतार, मूर्ति-पूजा, बहु-देवोपासना आदि को बुरा ठहराया उसी प्रकार मुसलमानों के क़ुरबानी, रोज़ा, नमाज़ आदि का भी खण्डन किया।

इस प्रकार पारस्परिक वैमनस्य के मूल कारणों को हटा कर इन लोगों ने शुद्ध ईश्वरोपासना का प्रचार, तथा विश्व

बन्धुत्व की शिक्षा को अपना उद्देश्य बनाया और शान्ति-स्थापना के मार्ग में से विघ्न-बाधाओं को दूर करने में कई अंशों में सफलता भी प्राप्त की। अन्धपरम्परा-जनित अज्ञान का मूलोच्छेदेन करने में भी इन्होंने कोई कसर नहीं रखी। और जो बातें इन्हें अन्याय पूर्ण तथा आडम्बर-युक्त जँची, निडर हो कर उनका खण्डन किया। इनकी उग्र समालोचना और करारी फटकारों से अत्याचारियों तक के प्राण काँप गए। महात्मा कबीर के इन शब्दों से —

दिन भर रोजा रहत हैं, रात हनत हैं गाय।
यह तो खून वह बन्दगी, कैसे खुशी खुदाय॥
अपनी देखी करत नहीं अहमक, कहत हमारे बड़न किया।
उनका खून तुम्हारी गरदन, जिन तुमको उपदेश दिया॥

सङ्कीर्ण विचार के धर्मान्ध पण्डित तथा मुसलमान अब भी काँप जाते हैं। इन्होंने शान्ति-स्थापना के लिये "परस्पर का प्रेम पूर्ण व्यवहार, और हृदय की शुद्धि" को आवश्यक माना है।

इस प्रकार इन महान आत्माओं ने अपनी मर्मस्पर्शिनी एवम् प्रतिभा-पूर्ण "बानियों" के द्वारा शन्ति-स्थापना के मार्ग को निर्विघ्न कर दिया। शान्ति देवी के मन्दिर का निर्माण हो गया; केवल मूर्ति-प्रतिष्ठा की कसर रह गई। इस पवित्र कार्य के लिए मनुष्य "शान्ति के पुजारी" के दर्शनों के लिए उत्सुक हो उठे।

" फूल "

हाड़ जरै ज्यों लाकड़ी, केस जरै ज्यों घास।
सब जग जरता देख कै, भये कबीर उदास॥
पानी केरा बुद्‌बुदा, अस मानुष की जात।
देखत ही छिप जायगी, ज्यों तारा परभात॥

रावी नदी के किनारे एक हरे भरे पेड़ के नीचे हरी-हरी दूब पर एक दस वर्ष का बालक बैठा हुआ शान्त भाव से कबीर के उपर लिखे हुये दोहे पढ़ रहा था।

सन्ध्या का समय था, शीतल वायु मन्द मन्द गति से रावी के जल के साथ अठखेलियाँ करता हुआ उसके शान्त वक्षस्थल में चञ्चलता उत्पन्न कर देता था। रावी-हृदय भी इस छेड़खानी से उन्मत्त हो हिलोरें लेने लगता। रावी-दुकूल के पास खिले हुए कमल अपने प्रिय के आसन्न वियोग से दुखी हो मुरझाए जा रहे थे। इस प्रकार अभागे भारतवर्ष के सुख-दुख से विरक्त, प्रसन्न-वदना देवी प्रकृति अपने कर्तव्य-पथ पर अविचलित भाव से अग्रसर हो रही थी। चारों ओर शान्ति का साम्राज्य था। किन्तु वह बालक हृदय अशान्त था। रावी जल की अशान्त तरङ्गों की तरह उसके मानस-पटल पर विचारों की सैकड़ों तरङ्गें एक दूसरे के पश्चात् आती थीं और उस बालक की " आह " के साथ अन्तरिक्ष में विलीन हो जाती थी। भारतवर्ष की बढ़ती हुई अशान्ति से वह बाल-हृदय विचलित हो उठा था। आज ही प्रातःकाल को उसने गाँव के सरदार की कचहरी में हाहाकार करती हुई एक हिन्दू स्त्री के

गोद का बच्चा छिनते देखा था! और फिर देखी थी उस असहाय अबला के उस एक मात्र आधार की उसके ही सामने हत्या!! किस हृदय-हीनता और पाशविकता के साथ वह नन्हा सा सुकुमार बालक जलती हुई आग के बीच में छोड़ दिया गया था! यह दृश्य रह रह कर उस बालक के सामने से घूम जाता था, और वह अशान्त एवम् कोलाहल मय संसार से उकता कर देवी प्रकृति के शान्तिपूर्ण आश्रम में सान्त्वना पाने के लिये गाँव से चला आया था। संसार की असारता का अनुभव तो वह बहुत दिनों से कर ही रहा था किन्तु इस प्रकार के प्रतिदिन के बढ़ते हुए हुए नृशंसता-पूर्ण अत्याचारों से उसका करुण-हृदय विचलित हो उठा था। ऐसी दशा में कबीर के दोहे उस बालक को सान्त्वना प्रदान करते थे। रावी जल में उठती हुई तरङ्गों एवम् रावी दुकूल पर बहते हुए पानी के बुदबुदों को देख कर हठात उसके मुँह से

"पानी केरी बुद-बुदा अस मानुष की जात"

निकल पड़ा था। शान्त दृष्टि से उसने शून्य अन्तरिक्ष की ओर देखा, उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो शान्ति के सन्देशवाहक महात्मा बुद्ध उसे कर्त्तव्य-मार्ग की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा कर रहे हैं। उसके चित्त में नवीन स्फूर्ति का प्रादुर्भाव हुआ। सामने रावी अविचल गति से कल-कल शब्द करती हुई कर्त्तव्य-मार्ग की ओर अग्रसर हो रही थी। भगवान भुवनभास्कर अस्त हो गए थे, किन्तु उनकी रक्त-वर्ण रश्मियाँ

सान्त्वना देने के लिये कमलपुष्प से अन्तिम आलिङ्गन करती हुई कह रहीं थी कि भगवान अपना कर्त्तव्य पालन करने गए हुए हैं। शुभ्र बकपाँति सुहावने शब्दों के द्वारा मानव-समाज को कर्त्तव्यपथ सुझाती हुई आकाश मार्ग से चली जा रही थी। उस बालक को ऐसा प्रतीत हुआ मानों महा-महिमा-मयी देवी प्रकृति स्वयम् उसे कर्त्तव्य-मार्ग का अनुसरण करने को आदेश दे रही हैं। बालक का आभाहीन मुख अपूर्व ज्योति से चमक उठा उसे ज्ञात हुआ कि वह इस अशान्त संसार में शान्ति, स्थापन के पवित्र यज्ञ का अनुष्ठान करने वाला परमात्मा का प्रेरित दूत है और वह उसी दिन से अपने कर्त्तव्य-पथ पर शान्त और अविचल गति से अग्रसर हुआ। जिस " शान्ति के पुजारी " की संसार को आवश्यकता थी, वह उसे मिल गया।

" सुगन्धि "

जगद् गुरू महात्मा नानक ही वे शान्ति के पुजारी थे जिनके आगमन की प्रतीक्षा संसार " उत्सुक " होकर कर रहा था। सती शिरोमणि मातेश्वरी तृप्ता देवी के गर्भ से इस महा पुरुष ने सम्वत् १५२६ वि० की कार्तिक पूर्णिमा के दिन जन्म लिया था। इनके पिता का नाम लाला कल्याण चन्द्र था।

लाला कल्याणचन्द्र तिलौंडी के सूबेदार के कारकुन थे, इसलिये बालक नानक चन्द्र को अपने बचपन में मुसलमान शासकों के अत्याचारों को देखने का अवसर कई बार मिला

था। उन अत्याचारों की बर्बरता और नृशंसता से उस बाल हृदय को तीव्र वेदना पहुँचती थी, और वे समवेदना से छट-पटाने लगते थे। एक दिन जब वह पुण्य सलिला रावी के तट पर बैठे हुए इस कोलाहलमय संसार से विरक्त हो, मुसलमानों के प्रतिदिन के बढ़ते हुए अत्याचारों के बारे में सोच रहे थे, तब अकस्मात् उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे कोई दैवी-शक्ति उन्हें संसार में शान्ति स्थापना के लिये आदेश दे रही है, उसी दिन से वे गाँव-गाँव घूम-घूम कर महात्मा कबीर के पद बानी और दोहे सुनाने लगे। वे तत्कालीन परिस्थिति (उस समय की दशा) का चित्र बड़े मार्मिक एवम् करुणोत्पादक शब्दों में खींचते थे, एक स्थान पर उन्होंने हिन्दुओं का दुख इस प्रकार प्रकट किया है "समय कृपाण की भाँति काटता चला जा रहा है, शासक अन्यायी और हत्यारे हो गए हैं, धर्म, पक्षियों के समान पर लगा कर उड़ गया है, अज्ञानान्धकार संसार पर शासन कर रहा है, ज्ञान और सत्य रूपी चन्द्रमा असत्य एवम् मिथ्या भ्रम रूपी बादलों में छिपा हुआ है, वह दिखाई नहीं पड़ता।

यद्यपि नानक पढ़े लिखे न थे, तथापि उनकी विद्वत्ता किसी प्रकार कम न थी, वे धर्म के नाम पर किये गए अत्याचारों से बड़े कुण्ठित हो जाते थे। उन्होंने भी कबीर की भांति धर्म के बाह्याडम्बरों का बड़े प्रभावोत्पादक शब्दों में खण्डन किया है। धर्मोन्माद को वे घृणा की दृष्टि से देखते थे। उनका

बिचार था कि परमात्मा हिन्दू और मुसलमानों का अलग अलग नहीं ; उसके दरबार में सब बराबर हैं, उनके नाम पर लड़ना, उसकी आज्ञा का उलंघन करना है। सब उसी परब्रह्म की पवित्र सन्तान हैं, अतएव सब को आपस में प्यार के साथ रहना चाहिए।

संसार की असारता का इन्होंने स्थान-स्थान पर उल्लेख किया है ; इस संसार में कोई अपना नहीं है, सब मतलब के साथी हैं।

" सङ्गी न कोई नानका, उह हंस अकेला जाइ "

फिर किसके लिये यह हाय हाय, और किस के लिये यह हत्याकाण्ड ! यह जो संसार दिखाई देता है, वह

सब कछु जीवत को व्यौहार
मृग तृस्ना ज्यों जग रचना यह देखो देहि विचार

ऐसी दशा में इस अनजान स्थान में तो नानक अपने मन को " भज नानक भज राम-नाम नित, जाते हो उद्धार " कह कर सान्त्वना देते हैं।

इस स्वार्थमय संसार में जीवन-यात्रा सफलता पूर्वक और शान्ति के साथ समाप्त करने के लिए उनका एक मात्र आदेश यही है कि परमात्मा की ओर लगन रखते हुए मनुष्य शान्ति के साथ अपना-अपना कार्य करता चला जाय। यही उनके महाशब्द हैं, यही उनकी पवित्र बानियों का सार है। वे स्वयम्

गृहस्थ थे। १९ वर्ष की अवस्था में उनका विवाह हुआ था। और उनकी साध्वी धर्मपत्नी माता सुलक्षणी देवी के गर्भ से श्रीचन्द्र और लक्ष्मीचन्द्र दो पुत्र रत्नों का जन्म हुआ था। इस प्रकार संसार के रंग-मञ्च पर एक आदर्श गृहस्थ का अभिनय करते हुए भी उन्होंने विदेह-राज महात्मा जनक की तरह अपने आप को संसार से इस प्रकार दूर रखा जैसे जल में रहते हुए भी कमल पर जल का प्रभाव नहीं पड़ने पाता।

पँखुड़ी

महात्मा नानक ने अपने उपदेशों के द्वारा मृतप्राय हिन्दू समाज में नवजीवन का सञ्चार किया, उन्होंने परतन्त्र राष्ट्र को स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाया जिसके परिणाम-स्वरूप मुग़ल राज्य की जड़ें हिल गईं, और भारतवर्ष में स्वतन्त्रता की लहर दौड़ गई। गुरुदेव एक पूर्ण अनुभवी थे और भारत वर्ष के अतिरिक्त आप नैपाल, भूटान, ब्रह्मा, मक्का, मदीना, रूम, बग़दाद, काश्मीर, तिब्बत, तबरेज़, तहरान, प्रभृति देशों में भी यात्रा कर आए थे।

नानक के जीवन में महात्मा कबीर का प्रभाव बहुत पड़ा, कबीर उनके समकालीन थे और उन्होंने काशी में उन का दर्शन लाभ भी किया था, और उनके उपदेशामृत से अपने आपको कृतकृत्य माना था।

इन महानुभाव ने सं० १५९६ विक्रमी में ६९ वर्ष १० मास की अवस्था में करतारपुर में अपनी मानवी लीला समाप्त की।

अन्त समय में जो शब्द उनमें मुख श्री से निःसृत हुए थे, उनसे उनकी हृदय की वेदना का पता चलता है।

मनकी मनहीं माहिं रही,

ना हरि भजे न तीरथ सेये, चोटी काल गही ॥
दारा, मीत, पूत रथ सम्पति, धन जन पूर्ण मही।
और सकल मिथ्या यह जानों, भजना राम सही ॥
फिरत फिरत बहुते जुग हारयो मानस देह लही।
"नानक" कहत मिलन की बिरियाँ सुमिरत कहा नहीं ॥